चेतना विकास मूल्य शिक्षा

दृष्टापद

मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद वांग्मय से एक संकलन

Version 2

31 अक्टूबर 2019

श्री ए. नागराज जी द्वारा प्रणेत मध्यस्थ दर्शन (सह अस्तित्ववाद) में से शब्दों के संदर्भों के खोजने के क्रम में यह "दृष्टापद" शब्द के संदर्भों का संकलन है। यदि यहाँ लिखे हुए और मध्यस्थ दर्शन के मूल वाङ्ग्मय में कोई अंतर मिले तो मूल वाङ्ग्मय को ही सही माना जाए। यहाँ लिखे हुए में त्रुटियों के सुधार और इसको और उपयोगी बनाने हेतु भागीदारी करने के लिए रोशनी साहू (sahuroshani@gmail.com) से संपर्क करें।

Version history

Version 0.1	created by	Roshani Sahu, 01/09/2018
Version 0.2	created by	Roshani Sahu, 31/10/2019

दृष्टापद की परिभाषा

- सहअस्तित्व में अनुभव मूलक प्रमाण संपन्न संकल्प, चित्रण, विश्लेषण व संबंधों का चयन क्रिया ।

(परिभाषा संहिता, संस्करण : 2012 मुद्रण: 14 जनवरी 2016, पेज नंबर: 92)

अनुक्रमणिका

दृष्टापद को लेकर मध्यस्थ दर्शन वांग्मय में आये सन्दर्भों को निम्न क्रम से संकलित किया गया है.

1. मानव व्यवहार दर्शन ३
2. मानव कर्म दर्शन ४
3. मानव अभ्यास दर्शन ७
4. मानव अनुभव दर्शन ९
5. समाधानात्मक भौतिकवाद १०
6. व्यवहारात्मक जनवाद २३
7. अनुभवात्मक अध्यात्मवाद २५
8. व्यवहारवादी समाजशास्त्र ३७
9. आवर्तनशील अर्थशास्त्र ४७
10. मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान ५४
11. मानवीय संविधान सूत्र व्याख्या ६२
12. जीवन विद्या –एक परिचय ६८
13. विकल्प ६८
14. जीवन विद्या– अध्ययन बिन्दु ६९
15. मानवीय आचरण सूत्र ७०
16. संवाद – भाग १ ७२
17. संवाद – भाग २ ७३

संदर्भ: मानव व्यवहार दर्शन

(संस्करण: 2011, मुद्रण: 2015)

- जागृत मानव ही **दृष्टा पद** में गण्य है. (**अध्याय: 1, पृष्ठ नंबर: 1**)
- तदावलोकन: – सह–अस्तित्व में **दृष्टा पद** प्रतिष्ठा ही तदावलोकन क्रिया है. सह–अस्तित्व का दृष्टा जागृत–जीवन ही है. (**अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 32**)
- यह विकल्प अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था के रूप में है. इस प्रस्ताव में मानव ही अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का प्रमाण देना प्रतिपादित है. साथ ही मानव ही प्रमाण होने का साक्षी को भी संजो लिया है. इस मुद्दे पर सर्वमानव का ध्यानाकर्षण करना आवश्यक है ही. इस क्रम में समुदाय चेतना से मानव चेतना, मानव चेतना से समाज चेतना में परिवर्तित होना ही महत्त्वपूर्ण घटना है. ऐसे स्थिति की सफलता मानव ही, शिक्षा–संस्कार पूर्वक, सर्वतोमुखी समाधान संपन्न होना ही एक मात्र उपाय है. इसे सार्थक बनाने के क्रम में ही मानव व्यवहार दर्शन, मानव के सम्मुख प्रस्तुत है. इस प्रकार समग्र विकास और जागृति को परंपरा में प्रमाणित करने हेतु एक मात्र इकाई मानव है क्योंकि अस्तित्व में केवल मानव ही **दृष्टा पद** प्रतिष्ठा में है. भ्रमित मानव के द्वारा भ्रमित मानव के चार ऐश्वर्यो (रूप, बल, पद, धन) का शोषण होता है. (**अध्याय: 17, पृष्ठ नंबर: 150–151**)
- साथी

  :– सर्वतोमुखी समाधान प्राप्त व्यक्ति.

  :– स्वयं स्फूर्त विधि से **दृष्टा पद** में हों.

  :– स्वयं को जानकर, मानकर, पहचान कर, निर्वाह करने के क्रम में साथी कहलाता है. (**अध्याय:18, पृष्ठ नंबर: 174–175**)

संदर्भ: मानव कर्म दर्शन

(संस्करण: 2010, मुद्रण:2017)

- **दृष्टा पद** ही दर्शन क्षमता का प्रतिरूप है और व्यवहार उसके अनुरूप है जो प्रसिद्ध है। विचार के अभाव में शरीर द्वारा कोई कार्य–व्यवहार सिद्ध नहीं होता या प्रत्यक्ष नहीं होता। इससे स्पष्ट हो जाता है कि शरीर द्वारा किए जाने वाले संपूर्ण क्रिया–कलापों के मूल में विचार ही है। शरीर विचार नहीं है। यह विचार को प्रसारित करने का माध्यम है। इस निष्कर्ष से विचार, शरीर से अतिरिक्त है और यह चैतन्य है। **(अध्याय:1, पृष्ठ नंबर: 19)**
- भ्रममुक्ति (त्याग) एवं प्रेममय जीवन के बिना स्व–पर–कल्याण नहीं होता।

  कल्याण का तात्पर्य जागृति सहज निरन्तरता है।

  स्व–पर कल्याणकारी कर्म, उपासना एवं ज्ञान के बिना शान्ति पूर्ण नहीं होता।

  विरागमय जीवन में अभाव का अभाव हो जाता है। विराग ही आत्म–लक्ष्य कारक होता है।

  आत्म–लक्ष्य के प्रभाव से आत्म–बोध होता है।

  आत्म–बोध होने से आत्म–दीपन होता है।

  आत्म–दीपन होने से आत्म–विश्वास होता है।

  आत्म–विश्वास होने से अज्ञान का क्षय होता है।

  अज्ञान का क्षय होने से आत्म–प्रतिष्ठा होती है।

  आत्म–प्रतिष्ठा होने से पर–वैराग्य होता है।

  पर–वैराग्य होने से साम्राज्य सिद्धि होती है।

  साम्राज्य सिद्धि से परम ऐश्वर्य एवं पूर्ण तृप्ति होती है।

  ऐश्वर्य प्राप्ति से सहजावृत्ति होती है।

  सहजावृत्ति से भ्रम–मुक्ति का अनुभव होता है।

  भ्रम–मुक्ति का अनुभव ही मनुष्य के लिये चरम पुरूषार्थ है। यही पूर्ण जागृति और **दृष्टा पद** प्रतिष्ठा है। **(अध्याय:2, पृष्ठ नंबर:51–52)**

- दर्शन (न्याय,धर्म, सत्य), दृष्टा (मानव जीवन), दृश्य (सह–अस्तित्व)

  ध्यान (जागृति), ध्याता (मानव), ध्येय (भ्रम मुक्ति, जीवन मूल्य, मानव लक्ष्य सहज प्रमाण),

  कारण (ज्ञानावस्था), कर्ता (मानव), कार्य (अखंडता, सार्वभौमता में भागीदारी)

  साध्य (**दृष्टा पद**, जागृति), साधक (मानव), साधन (शरीर व जीवन) **(अध्याय:17, पृष्ठ नंबर:154)**

- सह–अस्तित्व वादी सोच के अनुसार ज्ञान, ज्ञाता, ज्ञेय को ठीक–ठीक अध्ययन किया जा सकता है। ज्ञाता के रूप में जीवन को, ज्ञान के रूप में सहअस्तित्व दर्शन ज्ञान; जीवन ज्ञान; मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान को पहचाना गया। जागृति पूर्वक मानवाकाँक्षा, जीवनकाँक्षा को सार्थक बनाना ज्ञेय का तात्पर्य है, अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था पूर्वक मानव लक्ष्य, जीवन लक्ष्य को प्रमाणित करना है, यही ज्ञेय के सार्थक होने का प्रमाण है।

  इसी प्रकार दृष्टा, दृश्य, दर्शन की भी सार्थक व्याख्या हो पाती है। **दृष्टा पद** में जीवन, दृश्य पद में सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व, दर्शन के अर्थ में अस्तित्व दर्शन के रूप में सार्थक व्याख्या होना हो जाता है। **(अध्याय: 17, पृष्ठ नंबर:156–157)**

- ध्यान देने का मुद्दा यहाँ यही है कि जो कुछ भी हमारे सम्मुख प्रतिबिम्बित है, उसके मूल में कोई कर्त्ता पद है कि नहीं, करने वाला है कि नहीं। अगर इसके मूल में कोई कर्त्ता नहीं है, तो विश्वकर्त्ता पद का आरोप गलत हो गया। अगर कर्त्ता नहीं है, तो भोक्ता पद कैसा होगा। यदि ऐसा नहीं है, तब **दृष्टा पद** का क्या हुआ। यह सब एक के बाद एक प्रश्न उदय होता रहा है। इन प्रश्नों का उत्तर आदर्शवादी विधि से नहीं मिल पाता है। **(अध्याय: 18, पृष्ठ नंबर:160)**
- ...सहअस्तित्व में अर्थात् व्यापक वस्तु में संपूर्ण एक–एक वस्तुयें सम्पृक्त रहने से ऊर्जा सम्पन्नता, बल सम्पन्नता वश, स्वयं स्फूर्त विधि से क्रियाशील होना, इसके लिए कोई कराने वाले का जरूरत न होना पाया गया। छोटे से छोटे, बड़े से बड़े सभी रचनायें अपने आप में क्रियाशील रहना देखने को मिला। ऐसी क्रियाशीलता ही श्रम, गति, परिणाम के रूप में, यही विकासक्रम में परिणाम का अमरत्व विकास पद से ख्यात होना समझ में आ गया। इसकी गवाही गठन पूर्ण परमाणु पद ही है, चैतन्य पद ही है। विकास क्रम में कर्त्ता पद स्पष्ट था। चैतन्य पद में जागृति क्रम में जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में जीव संसार और भ्रमित मानव परम्परा में जीने की आशा, विचार, इच्छा स्पष्ट हो गई। जीने की आशा को स्पष्ट करते हुए चाहना, न चाहना प्रमाणित हो गयी। इसी के साथ चाहत के रूप में अर्थात् जीने की चाहत के साथ सुखी होने का चाहत मानव से प्रकाशित हुई। इसके लिये मनाकार को साकार करना सम्भव हो गया। इससे यह सुस्पष्ट हो जाता है कि सुखी होने की मानसिकता, खुद की इच्छा के रूप में मानव में प्रगट हुई। इसके आधार पर पहले से कर्त्ता पद रहा, भोक्ता पद की अपेक्षा हुई, सुख भोगने की अपेक्षा हुई। इसके लिए **दृष्टा पद** का उदय होना अवश्यंभावी हो गया। ऐसा **दृष्टा पद** प्रतिष्ठा का प्रमाण ही है, समझदारी।

समझदारी ही **दृष्टा पद**, ज्ञान तत्व के साथ ज्ञाता के रूप में प्रतिष्ठा सम्पन्न होना पाया गया। इस विधि से दृष्टा, कर्त्ता, भोक्ता पद को मानव ही प्रमाणित करता है। **(अध्याय: 18, पृष्ठ नंबर: 161)**

- ...मानव, जीवन और शरीर का संयुक्त रूप में ही वैभवित रहना पाया जाता है। चैतन्य इकाई की महिमा ही है दृष्टा, ज्ञाता पद सम्पन्नता को प्राप्त कर लेना। फलस्वरूप, प्रमाणित करने के अर्थ में मानव परम्परा में प्रमाणित करता हुआ कर्त्ता, भोक्ता पद पाया जाता रहा। इस प्रकार यह स्पष्ट हो गया भौतिक, रासायनिक संसार स्वयं स्फूर्त कर्त्ता पद में, चैतन्य पद जीवन अपने जागृति सम्पन्नता सहित दृष्टा, ज्ञाता के रूप में होना पाया गया। दृष्टा, ज्ञाता के रूप में कर्त्ता पद का उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजनशीलता विधि से जीवनाकाँक्षा, मानवाकाँक्षा को प्रमाणित करने का सौभाग्य उदय होता है। इसके विपरीत भ्रमित रहने से, समस्याओं से, क्लेशित होना होता है। जहाँ तक रासायनिक, भौतिक संसार है, यह विकासक्रम में यथास्थिति में परिणामशीलता के आधार पर स्पष्ट हुई है। इस प्रकार कर्ता पद के साथ भोक्ता पद बना ही है। क्योंकि परिणाम का स्वरूप अनेक यथास्थिति में दिखाई पड़ता है। देखने का मतलब समझना ही है। समझना संपूर्ण वैभव, महिमा जीवन में होना पाया जाता है। इस प्रकार, चैतन्य संसार में **दृष्टा पद** प्रतिष्ठा जुड़ गयी। यह जागृति के फलस्वरूप स्पष्ट हुई। यही मुख्य मुद्दा है। ऐसे सम्पूर्ण रासायनिक, भौतिक क्रिया में, जीव संसार में, भ्रमित मानव में कर्ता, भोक्ता होने का गवाही सदा–सदा से बना ही है। इसीलिए, मानव **दृष्टा पद** पूर्वक ही सार्थक सुफल होने की व्यवस्था है। भ्रमित अवस्था में नहीं। अस्तु, **दृष्टा पद** जागृत परम्परा का ही महिमा होना स्वभाविक है। इसलिए मानव परम्परा को बनाये रखना हम सब मानव के लिये सर्व शुभकारी सूत्र है, व्याख्या है। **(अध्याय: 18, पृष्ठ नंबर: 161–162)**

संदर्भ: मानव अभ्यास दर्शन

(संस्करण: द्वितीय, मुद्रण: 2010)

- प्रेम प्रतिष्ठा ही सतर्कता, परमानन्द प्रतिष्ठा ही सजगता है। वृत्ति व चित्त की एकसूत्रता में समाधान, चित्त व बुद्धि की एकसूत्रता में प्रेम, बुद्धि व आत्मा की एक सूत्रता में परमानन्द प्रतिष्ठा पायी जाती है। यही जागृत मानव में, से, के लिए सहज प्रतिष्ठा है।

  न्यायपूर्ण व्यवहार = सुख

  सुख की निरंतरता = शान्ति

  शान्ति की निरंतरता = संतोष

  संतोष की निरंतरता = आनन्द

  आनंद की निरंतरता = परमानन्द

  नियम पूर्ण उत्पादन, न्यायपूर्ण व्यवहार एवं धर्मपूर्ण विचार = मानवीयतापूर्ण जीवन व अतिमानवीयता की ओर स्पष्ट संभावना एवं अध्ययन

  मानवीयतापूर्ण जीवन व अतिमानवीयता की स्पष्ट संभावना एवं अध्ययन = निर्भ्रम ज्ञान

  निर्भ्रम ज्ञान = विवेक सम्मत विज्ञान

  विवेक व विज्ञान = बौद्धिक समाधान व भौतिक समृद्धि

  भौतिक समृद्धि एवं बौद्धिक समाधान = सह–अस्तित्व

  सह अस्तित्व = अखंडता

  अखंडता = सामाजिकता

  सामाजिकता = स्वर्गीयता

  स्वर्गीयता = अभय

  अभय = सुख, शांति, संतोष, एवं आनन्द

मन तथा वृत्ति का निर्विरोध = सुख

वृत्ति व चित्त का निर्विरोध = शांति

चित्त व बुद्धि का निर्विरोध = संतोष

बुद्धि व आत्मा का निर्विरोध = आनन्द

परम सत्य रूपी सह–अस्तित्व में अनुभूति = परमानन्द

ऐसी अनुभूति ही चैतन्य प्रकृति का चरमोत्कर्ष विकास है। यही परमानंद है।

मूलत: जागृत मानव अनुभूति एवं **दृष्टा पद** में प्रतिष्ठित हैं। अनुभव मूलक व्यवहार समाधान, समृद्धि मूलक उत्पादन ही मानव जीवन की चरितार्थता है। **(अध्याय: 3, पृष्ठ नंबर: 44–45)**

- मानव में पायी जाने वाली स्वतंत्रता की तृषा का तृप्त हो जाना ही मानव–जीवन में **दृष्टा पद** एवं जागृति है। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर: 88)**

संदर्भ: मानव अनुभव दर्शन

(संस्करण: 2011, मुद्रण: 2016)

- मानव **दृष्टा पद** में जागृति प्रमाण सम्पन्न है। (अध्याय:1, पृष्ठ नंबर: 1)
- ज्ञानात्मा, जीवात्मा, जड़, प्रकृति तथा परमात्मा एवं उसके अनुभव की चर्चा प्रसिद्ध है। यही जीव जगत एवं ईश्वर सहज अध्ययन है। **दृष्टा पद** प्रतिष्ठा में अध्ययन करने वाला मानव ही है। (अध्याय:6, पृष्ठ नंबर:34)

संदर्भ: समाधानात्मक भौतिकवाद

(संस्करण: 2009)

- भ्रम–निर्भमः– इस प्रश्न का उत्तर अस्तित्व में दृष्टा(जागृत व्यक्ति) व्यक्ति दे सकता है। इसीलिए इस व्यक्ति ने भ्रम–निर्भम की बात उठाई है। सहज रूप में अस्तित्व में पढ़ लिया है, देख लिया है, समझ लिया है। यहाँ यह स्मरण रखने योग्य है कि भौतिक–रासायनिक वस्तुओं को जब अवस्था के रूप में अध्ययन करने के लिए – ''समाधानात्मक भौतिकवाद'' संकल्पित हो गया, तब यह विश्वास करने के लायक है कि जो–जो बातें कही गई हैं वे अध्ययन के लायक हैं। इनके लिए किन्हीं पूर्व ग्रंथों का उद्धरण नहीं हैं। इसलिए इन बातों का अध्ययन करके जो भी इसे समझना चाहे, इसे समझा जा सकता है तथा इन बातों पर विश्वास किया जा सकता हैं। इस आधार पर यह जो कुछ भी प्रस्तुत है, वह मूलतः ''अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन'' है। यह बात पहले भी कही जा चुकी है। इसको पढने वाला और अध्ययन करने वाला मानव ही होगा और हर मानव अस्तित्व में ही वर्तमान हैं। इन सहज तथ्यों को स्वीकारना पर्याप्त हैं। भ्रम–निर्भम मानव में, मानव से, मानव के लिए जागृति क्रम से स्पष्ट होता हैं। जो था, वही वर्तमान हैं। इन दोनों बातों के लिए पुष्टि प्रस्तुत की जा रही है। इस सहज तथ्य में मानव ही देखने समझने योग्य हैं। अस्तित्व स्वयं वर्तमान है और अस्तित्व में मानव अविभाज्य रूप में वर्तमान है। यही ध्रुव बिन्दु हैं, जहाँ निर्णय कर सकते हैं कि जो भी हैं, वही होता है। यही उत्तर पाने की स्थिति हैं। मानव के सम्मुख मानव सहित चारों अवस्थाओं में प्रकृति सत्ता में दिखती हैं। इन चारों अवस्थाओं की प्रकृति, इस धरती में दिखती हैं। यह धरती स्वयं एक सौरव्यूह के अंगभूत कार्यरत दिखाई पड़ती हैं। यह सौरव्यूह अनंत सौरव्यूहों के अंगभूत रूप में कार्यरत दिखाई पड़ता है। दिखने से तात्पर्य समझने से ही हैं। समझने की क्षमता प्रत्येक मानव में जीवन सहज रूप में समाई हुई हैं। जीवन तात्विक रूप में गठनपूर्ण परमाणु है। यह पहले स्पष्ट किया जा चुका है। जीवन में ही आशा, विचार, इच्छा और संकल्प तथा प्रामाणिकता रूपी अक्षय शक्तियाँ कार्य करती हुई, प्रत्येक मानव में दिखाई पड़ती है जिसका अध्ययन किया जा सकता है। इसी प्रकार मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि, आत्मा रूपी अक्षय बल प्रत्येक मानव में क्रियारत है। इसका विश्लेषण भी पहले स्पष्ट किया जा चुका है। स्मरण रखने योग्य तथ्य यह है कि जीवन सहज शक्ति और बल अविभाज्य रूप में कार्यरत रहते है। इसके अध्ययन के लिए वस्तु मानव है और अध्ययन संभव है। इसी विधि से प्रत्येक मनुष्य द्वारा स्वयं को अध्ययन करना भी संभव हो गया। इसके लिए जीवन विद्या कार्यक्रम योजना और ज्ञान प्रमाणित होने को आगे प्रस्तुत किया गया है। ऐसा अक्षय बल, अक्षय शक्ति संपन्न जीवन ही जागृति पूर्वक **दृष्टापद** में वैभवित होने और प्रमाणित होने का कार्य सहज ही कर पाता है; जब से मानव परंपरा जागृत हो जाये तभी से। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 102– 104)**

- जब मैं जागृति पूर्वक अस्तित्व सहज अध्ययन के लिए प्रस्तुत हुआ तब यह पता लगा कि अस्तित्व समग्र ही अध्ययन की वस्तु हैं, तभी यह भी पता लगा कि मानव भी अस्तित्व में अविभाज्य है। ''मानव जीवन और शरीर का संयुक्त साकार रूप है" – इसे पहले स्पष्ट किया जा चुका है। इसी क्रम में यह भी देखने को मिला कि जीवन ही सह–अस्तित्व में जागृति पूर्वक **दृष्टा पद** प्रतिष्ठा पाता हैं। यही जीवन तृप्ति का आधार बिंदु हैं और यही जीवन जागृति परंपरा रूप में प्रमाणित होना–रहना सहज जागृति को प्रमाणित करने का अधिकार है। इस क्रम में मानव ही जागृति पूर्वक **दृष्टा पद** में है– यह ख्यात होता है। ख्यात होने का तात्पर्य है कि इंगित तथ्य सभी को स्वीकार हो चुका है। इसका लोक व्यापीकरण हो सकता हैं और प्रत्येक व्यक्ति इसे स्वीकारने के लिए बाध्य है। इस बाध्यता का तात्पर्य आवश्यकता, विचार, इच्छा, कल्पना के रूप में सहमति से है। जागृति सहज आवश्यकता के संदर्भ में परीक्षण किया जा सकता है। बच्चे, बूढ़े, ज्ञानी, अज्ञानी, गरीब, अमीर सबसे इस बात की परीक्षा की जा सकती है कि जागृति एक आवश्यक तत्व है या नहीं। सबका निष्कर्ष यही होगा कि जागृति आवश्यक है। इस प्रकार मानव में जागृति की आवश्यकता ख्यात होना प्रमाणित है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 116)**
- अस्तित्व सहज वर्तमान में मानव जब जागृतिपूर्वक **दृष्टा पद** में होता है–ऐसी स्थिति में भौतिक–रासायनिक व चैतन्य जीवन, ये समस्त वस्तुएँ व्यापक असीम अवकाश रूपी सत्ता में सम्पृक्त और अविभाज्य रूप में होना–रहना स्वीकार होता है– यह समझ में आता है। यही मानव में, से, के लिए जागृत होने के क्रम में मुख्य मुद्दा है। ऐसी अविभाज्यता वर्तमान में अनुभव होना ही निर्भमता का प्रमाण है। इस प्रकार इस अस्तित्व को समझने के उपरान्त प्रत्येक मानव प्रामाणिक होता ही है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 119)**
- सत्य बोध और अनुभव के लिए दर्शक को ज्ञान दृष्टि द्वारा ही दृश्य समझ में आता है। समझ में आने के मूल में जानना, मानना प्रक्रिया है। जानने, मानने का संयुक्त स्वरूप ही अनुभव बोध हैं। इसकी तृप्ति और अक्षुण्णता ही बोध सम्पन्न परंपरा हैं। **दृष्टा पद** का प्रयोग बोध और अनुभव के रूप में ही हो पाता हैं। इसको देखा, समझा और अनुभव किया गया है। बोध और अनुभव, सत्य सहज रूप में ही हो पाता है। परम सत्य सह–अस्तित्व ही है। अस्तित्व समग्र शाश्वत वर्तमान है। अस्तित्व में इस धरती में दिखने वाली चारों अवस्थाएँ हैं। इसी का प्रमाण है कि इस धरती पर ये चारों अवस्थाएँ स्वयं प्रमाणित हैं। अस्तित्व में होना ही कभी भी, कहीं भी प्रमाणित होना है। जैसे अभी हम देख रहे हैं, समझ रहे हैं चन्द्रमा पर कोई जीव –जन्तु, वनस्पति नहीं है। कालान्तर में वहाँ ये सब होने की संभावना बनी है। सूर्य को मानव ज्ञान के अनुसार सर्वाधिक तपे हुए बिंब के रूप में पहचाना जाता है। मानव की कल्पना में यह भी आता हैं कि कालान्तर में यह ठंडा हो सकता है– ऐसा भी सोच सकते हैं। ऐसी स्थिति में इस धरती की स्थिति, गति क्या होगी, इस संदर्भ में कल्पनाओं को दौड़ाया जाता है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 136–137)**

- इस तरह प्रकारान्तर से यह हर व्यक्ति में (दृष्टा होना और कल्पनाशील होना) प्रमाणित होता ही है। अस्तित्व अनंत और व्यापक है। देशकाल से मुक्त हैं। इसी आधार पर इसमें देश कालातीत महिमा का होना अवश्यंभावी रहता है। यह **दृष्टा पद** मानव में सहज सार्थक होता है। अस्तित्व में जागृत मानव ही **दृष्टा पद** में है। दृष्टा, दृश्य, दर्शन अविभाज्य है, क्योंकि अस्तित्व में चारों अवस्थाएँ सत्ता में अविभाज्य है। जागृत मानव का अस्तित्व में अविभाज्य प्रमाणित होना ही **दृष्टा पद** का प्रमाण है। इस तथ्य को ध्यान में लाने पर बहुआयामी कार्य सहित मानव की समीक्षा उनके कार्यों के आधार पर स्पष्ट हो जाती है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 137–138)**
- अस्तित्व नित्य वर्तमान है, जागृत मानव **दृष्टा पद** में है; यह परम सत्य हैं, इस पर आधारित एक नजरिया है। इस नजरिए से विगत को, इतिहास के ढंग से देखने पर पता चलता है कि सभी परम्पराएँ अपने–अपने समुदाय अथवा व्यक्ति के लिए अनेकानेक छल, बल, सम्मोहन, प्रलोभन करती रही और इससे परेशानियाँ बढ़ाता रहा। इसका मूल कारण इतना ही है कि भ्रमित मानव समुदाय परंपरा में अपने ढंग से भ्रमित रहकर भ्रमित परंपरा बनाने के लिए जीवन की शक्तियों को लगाते रहे। आदिकाल से ही मानव जीवन और शरीर का संयुक्त साकार रूप हैं, जीव चेतनावश भय प्रलोभन रूप में जीवन शक्तियाँ पहले भी काम करती रही हैं, अभी भी काम कर रही हैं। इस आधार पर वर्तमान में भ्रम–निर्भम संबंधी परीक्षण करने जाते हैं तब पता चलता है कि :–

1. मानव सर्वप्रथम कल्पनाओं को भ्रमवश सत्य मानता रहा है।
2. भ्रमित विचारों के आधार पर सत्य मान लेता है।
3. भ्रमित इच्छाओं के आधार पर सत्य मान लेता है।
4. सत्य बोध के आधार पर सह–अस्तित्व समझ में आता है।
5. सह–अस्तित्व रूपी परम सत्य में अनुभव के आधार पर सत्य समझता है, प्रमाणित रहता है।

इस चित्रण में महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि मानव में दस क्रियाएँ बताई गई है, जिनमें से पाँच क्रियाएँ बल के रूप में तथा पाँच क्रियाएँ शक्ति के रूप में कार्यरत रहती हैं। जागृत मानव में, से, के लिए बल और शक्ति ही, स्थिति और गति के रूप में प्रमाणित होते हैं। स्थिति और गति अविभाज्य है, इसको स्वयं में ऐसा अनुभव किया जा सकता है, निरीक्षण किया जा सकता है। मनोबल आस्वादन–चयन के रूप में, वृत्ति बल तुलन विश्लेषण के रूप में, चित्त बल चिन्तन–चित्रण के रूप में, बुद्धि बल बोध व संकल्प के रूप में, आत्मबल अनुभव प्रामाणिकता के रूप में पहचानने में आता है। शक्तियाँ क्रमशः मन शक्ति चयन के रूप में, वृत्ति शक्ति विश्लेषण के रूप में, चित्त शक्ति चित्रण के रूप में, बुद्धि शक्ति संकल्प के रूप में, आत्म शक्ति प्रामाणिकता के रूप में प्रमाणित हो पाता है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 138–139)**

- रासायनिक–भौतिक संयुक्त वैभव क्रम में संपूर्ण रचनाएँ साकार हो जाता है और साकार है। इन्हीं रचनाओं में जीव और मानव शरीर रूप में भी स्थापित रहता है, स्थापित होता है। यह विश्लेषण अस्तित्व सहज अभिव्यक्ति हैं। वर्तमान में अस्तित्व ही दृष्ट रूप मानव में, से, के लिए दर्शन की सम्पूर्ण वस्तु हैं। दृष्टा सहज प्रकृति अपने में चैतन्य इकाई के स्वरूप में वर्तमान है। चैतन्य रूपी जागृत जीवन ही **दृष्टापद** में बोध और अनुभव पूर्वक, अस्तित्व दर्शन और जीवन ज्ञान को व्यक्त, सम्प्रेषित और प्रकाशित कर पाता है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 146)**
- ''समाधानात्मक भौतिकवाद" के विचारों का आधार सह–अस्तित्व ही है– यह स्पष्ट किया जा चुका हैं। सह–अस्तित्व मूलत: अस्तित्व ही हैं, सह–अस्तित्व ही अपने सूत्र में वर्तमान एवं नित्य प्रभावी है और शाश्वत् व्यवस्था के रूप में सह–अस्तित्व हैं। अस्तित्व नित्य वर्तमान हैं। यही सह–अस्तित्व का नित्य वैभव हैं– यह स्पष्ट होता हैं। सह–अस्तित्व का स्वरूप हैं– सत्ता में संपृक्त जड़–चैतन्य–प्रकृति, जो स्वयं पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था और ज्ञानावस्था के रूप में इसी धरती में स्थित मानव को मानव में, से, के लिए दिखाई पड़ती हैं। इसमें से किसी अवस्था को घटाकर या बढ़ाकर सह–अस्तित्व सहज संपूर्णता पूर्णता और उसकी निरंतरता की कल्पना भी संभव नहीं हैं। दर्शन और ज्ञान ही **दृष्टापद** का प्रमाण हैं तथा त्व सहित व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी, **दृष्टापद** सहित वैभव यह संभावना मानव में समीचीन है। इससे अधिक ज्ञान, दर्शन और आचरण की आवश्यकता निर्मित नहीं हो पाती, इस मुद्दे पर बुद्धिवाद के अनुसार इसे कैसे समझा जाय कि और अवस्थाएँ निर्मित होने की आशा करना क्यों बुरा हैं, इस प्रकार से कुछ अस्पष्ट प्रश्न किये जा सकते हैं। अस्पष्ट प्रश्न इसीलिए हो जाते हैं कि मानव की आशा, आकांक्षा और अभिलाषाओं की अंतिम मंजिल ही है सर्वतोमुखी समाधान और प्रामाणिकता। यही जीवन जागृति का प्रमाण हैं। जीवन की अंतिम अभिलाषा जागृति हैं। मानव की अंतिम अभिलाषा सर्वतोमुखी समाधान और प्रामाणिकता हैं। समाधान से जागृति, जागृति से समाधान प्रमाणित होना ही मानव परंपरा की सफलता हैं। यही सफलता मानव व्यवस्था है और समग्र व्यवस्था में भागीदारी का प्रकाशन सूत्र है। इस सत्यता को अथवा साक्ष्य को स्पष्ट कर देता हैं प्रामाणिकता, स्वानुशासन सहज अभिव्यक्ति शीर्ष कोटि की जागृति है। यह भ्रम मुक्ति का प्रमाण है। यह निर्भमता का सहज प्रमाण है। इससे अधिक मानव में कल्पनाशीलता की, विचारशीलता की, इच्छाशीलता की गति और अपेक्षा बनती ही नहीं हैं। इसलिए, इसे अंतिम सार्थक परंपरा में निरंतर वैभव होने योग्य वस्तु के रूप में स्वीकारना एक आवश्यकता और अनिवार्यता है, क्योंकि मानव शुभ को स्वीकारता ही हैं, इसीलिए इसे स्वीकार करने के लिए बाध्य भी हैं। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर: 157–158)**
- किसी अवस्था को कम किया जाये, ऐसी कल्पना हो सकती है, पर इससे कम करना भी संभव नहीं हैं। मूलत: अस्तित्व ही चारों अवस्थाओं का स्वरूप हैं, चारों अवस्थाएँ इस धरती पर साकार हो चुकी है। इसमें संपूर्ण दृश्य, दृष्टा और दृष्टि की संभावना अर्थात् दृष्टि की क्रियाशीलता सभी संभावित हो गई हैं। इतना ही नहीं, यह अविभाज्य रूप में समीचीन हो गया है।

  इसमें से किसी एक को अलग करने की कल्पना, यदि–

1. पदार्थावस्था को अलग करें तो यह धरती ही नहीं दिखेगी।

2. प्राणावस्था को अलग करने की कल्पना करें तो वन, वन्य– प्राणी और मानव नहीं दिखेंगे।

3. जीवों को अलग करने की कल्पना करें, उस स्थिति में अनेक प्रकार के रोग और उपद्रव होंगे, वनस्पतियों को नष्ट करने वाले, मानव को रोगी बनाने वाले तत्व निर्मित हो जावेंगे।

4. मानव को अलग करने की कल्पना देखें, तब अस्तित्व में **दृष्टा पद** का वैभव इस धरती पर दिखेगा नहीं।

सर्वमंगल, सर्वशुभ और समग्र अभिव्यक्ति का संयोग ही अथवा सज जाना ही समग्र घटना है। ऐसी घटना संपन्न इस धरती में ''मानव ही अनुभवपूर्वक दृष्टा है।" **दृष्टा पद** को समृद्ध कर पाना ही जागृति है। जागृतिपूर्वक ही मानव परंपरा व्यवस्था है और यह व्यवस्था के रूप में वैभवित हो पाता है। इसीलिए मानव परंपरा को जागृत होने की आवश्यकता है, न कि किसी अवस्था को घटाने की। किसी अवस्था को घटाने पर सर्वशुभ की कल्पना नहीं हो पाती, इसलिए मानव का सहज वैभव, जागृति में ही है। मानव परंपरा के जागृत होने के लिए आवश्यकीय प्रेरणा, समीचीन हो चुकी हैं। उसमें से एक भाग यह ''समाधानात्मक भौतिकवाद" है। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:160–161)**

- यह भी इससे स्पष्ट हुआ है कि मानव ही नापने, तौलने और गिनने का कार्य करता है। यह मानव को **दृष्टा पद** में होने का सामान्य लक्षण है। आवश्यकता और आवश्यकता की कल्पना से अधिक नापना तौलना संभव नहीं है। इससे यह भी समझ में आता है कि मानव सहज आवश्यकताएँ सीमित हैं। संभावना अधिक है। इस तथ्य को सामने रखकर देखें। ''आवश्यकताएँ अनंत हैं, साधन सीमित हैं "– ऐसा जो वर्तमान अर्थशास्त्र में पढ़ाया जा रहा है– यह कहाँ तक सत्य हैं, कहाँ तक ये सच्चाई है, वह भी समझ में आवेगा। अस्तु, अस्तित्व नित्य वर्तमान है। सत्ता में संपृक्त प्रकृति में से चैतन्य प्रकृति ही जीवन है। जीवन में ही संचेतना प्रमाणित होती है। संचेतना का प्रमाण मानव में जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने के रूप में है। यह प्रकारान्तर से हर व्यक्ति में प्रमाणित है। जीवन चैतन्य पद का वैभव है। संचेतना, यह जागृत जीवन सहज अभिव्यक्ति है। इसकी सार्थकता, पूर्णता के अर्थ में– जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने के रूप में प्रमाणित होती है। अस्तु, परार्थ व पारमार्थिक विधि से क्रियापूर्णता (मानवीयता तथा देव मानवीयता) एवं आचरण पूर्णता पूर्वक जागृति पूर्णता को प्रमाणित करना, जागृत मानव परंपरा में, से, के लिए सहज संभव और आवश्यक है। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:163–164)**
- मानवीयता के खोल में ही, अमानवीयता पनपती हुई देखने को मिल रही हैं। ऐसा मजबूर होने का एक ही कारण है, परंपरा में मानवीयता का जीता जागता प्रमाण, बोध गम्य होने योग्य ज्ञान, दर्शन सुलभ न होना। इसे ऐसा भी एक सर्वेक्षण किया जा सकता है कि किसी भी नशाखोर व्यक्ति से विधिवत् किसी मुद्दे पर ज्ञानार्जन, विवेकार्जन विधि से बात करें, तब हम यह पाएँगे कि नशा किया हुआ व्यक्ति भी नशा नहीं किया हुआ जैसा प्रस्तुत होना चाहता है। एक चोर, डाकू से विवेक और व्यवस्था संबंधी चर्चा कर देखें तो हम यही पाते हैं कि चोरी–डकैती करते हुए उसी के

पक्ष में व्यवस्था व विवेक को उपयोग करते हुए नहीं मिलता है। अपितु, इसके विपरीत जो भी करते रहता हैं, किया रहता हैं उसी की निरर्थकता को बार–बार दोहराते रहता है। इसी प्रकार लाभोन्मादी, कामोन्मादी व भोगन्मादियों से व्यवस्था और विवेक प्रयोजन विधि से विधिवत् चर्चा करके हम यह पाते हैं कि सभी उन्माद निरर्थक है। इसी प्रकार आज के राजनेताओं से इस मुद्दे पर चर्चा करके देखें कि वोट, नोट, बँटवारा, संतुष्टि, असंतुष्टि कब तक चल सकती हैं? इससे स्वस्थ व्यवस्था मिल सकती हैं क्या? इस पर वे कहते हैं कि ''सबकी संतुष्टि हो नहीं सकती, इस बीच में झेलते रहना ही राजनीति है।" इन सभी वर्गों के साथ बात करने पर उनकी यह स्वीकारोक्ति है कि उन–उन कार्यों की बड़ी मजबूरी रही हैं, लेकिन ये सारे ''उचित काम" नहीं हैं। इन लोगों से पूछा गया कि ये ठीक नहीं है तो करते क्यों हो? इस पर वे कहते है कि ''इसके अलावा कोई दूसरा रास्ता नहीं हैं।" इसी प्रकार युवा पीढ़ी से पूछा गया कि, ''जो कुछ भी आप लोग कर रहे हैं, सोच रहे हैं– नशाखोरी, जमाखोरी, जिम्मेदारी–विहीन कार्य आदि क्या ये ठीक हैं? – ऐसा पूछने पर वे कहते हैं कि ''ईमानदारी से रोटी नहीं मिलती।" जिम्मेदारी से बात या काम किये तो पिस जाते हैं।" ऐसी दो टूक बातें युवा पीढ़ी करती है। मानवीयता के बारे में जब उनसे पूछते हैं तो ये कहते हैं ''यह तो जरुरी हैं।" इस तरह इन तथ्यों के आधार पर यही समझ में आता है कि अन्याय, भ्रष्टाचार, दुराचार करने वाला व्यक्ति भी मानवीयता को एक आवश्यकता के रूप में स्वीकारता है। ऐसे भी बहुत से महत्वपूर्ण लोगों की बातें की गई। इनमें धर्म गद्दी पर बैठे लोग भी रहे हैं, उनसे मानवीयता के संबंध में चर्चा की गई तो सभी ने मानवीयता को नकारना अनुचित बताया और मानवीयता की आवश्यकता बताई। उनकी भागादारी के बारे में पूछने पर वे कहते हैं कि ''भागीदारी की बात तो हम कर नहीं सकते क्योंकि हमारा अभी तक किया हुआ, इस नजरिए से, बाकी सब वृथा लगने लगता हैं। इसलिए हम इसे नहीं ले जा सकते।" इत्यादि। यह भी देखने को मिला कि ख्याति प्राप्त साधु, संत, मुनि ये लोग अपने को उन सबसे अच्छा मान लेता हैं, यही कि वे मानवीयता से अपने को श्रेष्ठ मान लेते हैं। उनके अनुसार मानवीयता सामान्य मनुष्य की कथा है, उनके अनुसार वे स्वयं अपने को मानवीयता से अधिक श्रेष्ठ मानकर, अपने संभाषणों को समाप्त करते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि साधु, सन्यासी, संत सभी मानवीयता की आवश्यकता से सहमत होते हैं। ये उस मानवीयता की मापदण्ड से भिन्न है– ऐसा समझ में आता है। लेकिन मानवता को सभी उचित ठहराते हैं। इस प्रकार सर्वाधिक लोगों को यह स्वीकृत है ही। इस विधि से मानवीयता का नाम सबको स्वीकृत है। मौलिकता भी सबको स्वीकृत है। मानवीय ज्ञान, जीवन ज्ञान है। जागृत मानव ही **दृष्टा पद** में हैं। अस्तित्व ज्ञान सभी मानवों को संभव हैं– इन बातों को रूढ़िवादी, कट्टरपंथी लोग जल्दी नहीं स्वीकारते, किन्तु विरोध करना भी नहीं बन पाता। **(अध्याय: 9 (1), पृष्ठ नंबर: 205–207)**

- मानवीय आहार

मानवीयतापूर्ण विधि से जीने की कला में आहार का स्वरूप एक महत्वपूर्ण बिंदु है। आशा, विचार, इच्छा, संकल्प, कल्पनाशीलता–कर्मस्वतंत्रता– यह सब मानवीयता के रूप में कार्य करेगा। उस स्थिति में मानव की मौलिकता अपने आप में मूल्यांकन का आधार बन पाता है। ऐसी स्थिति में यह विश्लेषण आवश्यक है कि यह आहार मानवीय हैं अथवा नहीं? पहले से ही इस बात को इंगित करा चुके हैं कि मानव शरीर भी प्राण कोषाओं से रचित रचना है। मानव में जीवन और शरीर संयुक्त साकार रूप में है। संपन्न शरीरों को जीवन चलाता है, यही जीव कोटि में आते हैं। ऐसे जीव कोटि भूचर, जलचर, नभचर रूप में होना स्पष्ट हो चुका है। अब मानव में मानव शरीर समृद्ध मेधस सम्पन्न शरीर हैं। इसी मनुष्य में ही कर्म स्वतंत्रता, कल्पनाशीलता प्रकाशित है। यही मानव **दृष्टा पद** संभावना सह–अस्तित्व में अनुभवपूर्वक प्रमाणित होता है। तब तक भ्रमवश भय–प्रलोभन होने के फलस्वरूप मानवेतर प्रकृति का शोषण, और **दृष्टा पद** में होने के फलस्वरूप पोषण करने वाले के रूप में देखने को मिला है। **(अध्याय: 9 (2), पृष्ठ नंबर: 208)**

- मानव की मौलिकता

मानव वंशानुषंगीय विधि से नियंत्रित नहीं होता जबकि सभी जीव होते हैं:– मानव अपनी मौलिकता को स्वयं पहचानते हुए अपने आचरण, विचार, व्यवहार, व्यवस्था को अक्षुण्ण बनाए रखना चाहता है। यह हर मानव सहज मौलिकता की महिमा और गरिमा है। मानव जागृति पूर्वक **दृष्टा पद** प्रतिष्ठा में है, इसलिए अपनी मौलिकता को पहचानना एक आवश्यकता हो गई है। मानवेत्तर जीवों में वंशानुषंगीय विधि से जीवन सम्मति के साथ नियंत्रित रहना, संतुलित रहना देखा जा रहा है। जबकि मानव ने अपने ही इतिहास के अनुसार वंशानुषंगीय विधि से नियंत्रित होना स्वीकारा ही नहीं। पहले इस तथ्य पर ध्यान दिया जा चुका हैं कि मानव अपने इतिहास के अनुसार बहुआयामी है। इसको मानव में ही घटित होना देखा गया और किसी जीव में इस प्रकार की घटना नहीं हुई। इस क्रम को देखने पर पता चलता है कि मानव का बहुआयामी इतिहास का आधार होना स्वयं वंशानुषंगीयता को नकारने की ही गवाही है। यह भी मानव परंपरा की एक मौलिकता हैं। मानव परंपरा भी मौलिक है। **(अध्याय: 9 (3), पृष्ठ नंबर:228)**

- व्यवस्था अस्तित्व सहज सह–अस्तित्व के रूप में है, जो चारों अवस्थाओं में प्रमाणित है:– मानव भी वर्तमान में ही, दृश्य को देखता है। देखने का मतलब समझना है, समझना समझदारी का प्रमाण प्रस्तुत करना ही जागृति हैं। समझना; जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने के रूप में प्रमाणित है। यही **दृष्टा पद** का प्रमाण हैं। उल्लेखनीय तथ्य यही है कि मानव अस्तित्व में अविभाज्य दृष्टा है। संबंधों के आधार पर ही अस्तित्व सहज व्यवस्था समझ में आता है। अस्तित्व सहज व्यवस्था सह–अस्तित्व ही हैं। इसलिए प्रत्येक एक की व्यवस्था होते हुए, समग्र व्यवस्था में भागीदारी सूत्र से सूत्रित रहना पाया जाता हैं इसका प्रमाण है कि चारों अवस्थाएँ, उनमें परस्पर में पूरकता,

उदात्तीकरण, विकास, जागृति सहज रूप में दिखाई पड़ता है। मानव ही इसमें जागृति का प्रमाण हैं। परमाणु में विकास का प्रमाण जीवन है। पूरकता का प्रमाण सम्पूर्ण प्राणावस्था है। उदात्तीकरण का प्रमाण सम्पूर्ण प्राणावस्था की रचना हैं तथा साथ ही जीव शरीर एवं ज्ञानावस्था (मनुष्य) शरीर की रचना है। **(अध्याय:9(4), पृष्ठ नंबर:236–237)**

- स्वयं को पहचानना जीवन ज्ञान एवं जागृति ''सह–अस्तित्व में अनुभव ही जागृति सहज नित्य वर्तमान है":– यही मुख्य बिन्दु है। मानव सहज रूप में ही वर्तमान सहज जागृति क्रम में है। स्वयं को पहचानना ही जीवन ज्ञान है। जीवन ज्ञान का अनुभव मानव में, से, के लिए सहज है। जीवन ज्ञान ही वर्तमान में स्वयं के होने के रूप में स्पष्ट करता है। होना ही वर्तमान है। अस्तित्व का स्वरूप ही नित्य वर्तमान हैं। सम्पूर्ण होना (अस्तित्व) चार अवस्थाओं में स्पष्ट है। सम्पूर्ण होने के साथ ही मानव का होना भी अविभाज्य हैं। अस्तित्व में जीवन और सत्तामयता भी अविभाज्य है। जीवन जागृत होने के उपरान्त भी अस्तित्व में ही नित्य वर्तमान होना पाया जाता है। अस्तित्व ही मूलतः वैभव है। जागृति पूर्वक जीवन अपने वैभव को व्यक्त करता है। यही **दृष्टा पद**, समझदारी का प्रमाण हैं। अस्तित्व वर्तमान हैं अस्तित्व और समझदारी में एकरूपता ही मूलतः व्यवस्था का सूत्र और व्याख्या है। **(अध्याय: 9 (4), पृष्ठ नंबर: 237–238)**
- समझदारी न होने की स्थिति में समस्या का प्रकाशन है:–अस्तित्व का सह–अस्तित्व के रूप में होना ही सूत्र और चार अवस्थाओं में होना ही नियति सहज व्याख्या स्वरूप हैं। इस प्रकार अस्तित्व ही सम्पूर्ण वस्तु हैं, जागृत जीवन ही दृष्टा है तथा मनुष्य ही **दृष्टा पद** को प्रमाणित करने योग्य होता है।

  मानव सह–अस्तित्व में अनुभवपूर्वक **दृष्टा पद** प्रतिष्ठा के आधार पर ही व्यवस्था का प्रमाण हैं। मानव ही समझदारी पूर्वक हर कार्य, व्यवहार, विन्यास को, विचारों को, व्यवस्था के रूप में अभिव्यक्त कर पाता है। समझदारी के बिना कल्पनाशीलता, कर्म–स्वंतत्रता का प्रयोग अपने आप में सर्वाधिक समस्याओं को पैदा कर लेता है।

  यही मानव में भ्रमवश होने वाली समस्याओं का कारण हैं कल्पनाशीलता को विचारों में भी प्रयोग करता हैं। तब वांङ्गमय, साहित्य को भी प्रस्तुत करता है। इसी के आधार पर कला, साहित्य के नाम से भी कल्पनाएँ दौड़ पड़ती है। **(अध्याय: 9(4), पृष्ठ नंबर: 238)**

- नियति सहज विधि से नियम, न्याय, धर्म, सत्य का सार्वभौम होना सहज हैं। मनुष्य को अनुभव पूर्वक अपने **दृष्टा पद** प्रतिष्ठा के आधार पर न्याय पूर्ण विधि से प्रस्तुत होना सहज हैं क्योंकि वह जीवन सहज है। जन्म से ही मानव न्याय का याचक होता है, सही कार्य–व्यवहार करना चाहते है, और सत्य वक्ता होता है। परंपरा से यह अपेक्षा सहज ही रहती हैं कि प्रत्येक मानव संतान; न्याय प्रदायिक क्षमता से संपन्न हो, सही कार्य–व्यवहार करने योग्य योग्यता से संपन्न हो, सत्य बोध होने की अर्हता प्राप्त करने में सक्षम हो, इसी रूप में सकारात्मक पक्ष स्पष्ट होता है। इसका मतलब यही है कि जागृत परंपरा सहज वैभव यही है, कि प्रत्येक संतान में संबधों, मूल्यों और मूल्यांकन

करने का ज्ञान सहज विचार और व्यवहार, अभ्यास सुलभ कार्यों में भागीदारी ही मानवीयतापूर्ण निष्ठा और परंपरा हो। जागृत परंपरा क्रम में प्रत्येक मानव संतान को सही कार्य–व्यवहार, ज्ञान, विचार और कर्माभ्यास सहज सुलभ होता है। अस्तित्व जैसा परम सत्य बोध अध्ययन पूर्वक सुलभ होता है। साथ ही जीवन ज्ञान जैसा परम ज्ञान संपन्नता सुलभ अथवा सर्वसुलभ होता है। ऐसी परंपरा ही मानव परंपरा है। ऐसी अर्हता जिन जिन परंपराओं में नहीं हैं, वे सब मानवीयतापूर्ण परंपरा के रूप में परिवर्तित होने के लिए सहज इच्छुक हैं अथवा बाध्य है। **(अध्याय: 9(4), पृष्ठ नंबर: 244–245)**

- जानना, मानना, पहचानना ही संस्कार है। संस्कारानुषंगीयता ही मानवीय व्यवस्था का आधार है:–दृष्टिगोचर, ज्ञान गोचर में से पहले सह–अस्तित्व में ही पदार्थावस्था, ''त्व" सहित नियम को परिणामानुषंगीय विधि से, संपन्न कर देते हैं। यही पदार्थावस्था के नियमित रहने का तात्पर्य हैं। प्राणावस्था में नियमित विधि से ''त्व" सहित व्यवस्था बीजानुषंगीय प्रक्रिया पूर्वक नियंत्रित रहना पाया जाता है। जीवावस्था अपने ''त्व" सहित व्यवस्था को वंशानुषंगीय विधि से संतुलित रूप में प्रमाणित करते हैं। मानव ज्ञानावस्था में एक मौलिक वैभव हैं। यह वैभव **दृष्टा पद** व जागृति सहज प्रमाणों के रूप में परंपरा हैं। ऐसा **दृष्टापद** जागृति सहज परंपरा में निरंतर सफल होता है। मानव परंपरा संस्कारनुषंगीय अभिव्यक्ति हैं। वंशानुषंगीयता केवल शरीर तक ही प्रक्रियाबद्ध है। मानव की अभिव्यक्ति जीवन प्रधान हैं, न कि शरीर प्रधान। यद्यपि शरीर और जीवन के संयुक्त रूप में ही मानव ख्यात है। जीवन में ही संस्कारों की स्वीकृति और जागृति प्रमाणित होती हैं। संस्कार जानने, मानने, पहचानने और प्रमाण रूप में निर्वाह करने की प्रक्रिया हैं। इसकी जागृति जानना, मानना को पहचानना और निर्वाह करना ही है। संस्कार प्रक्रिया परिवार परंपरा में, से, के लिए प्रदत्त होती है। संस्कार प्रक्रिया का यही प्रमाण हैं और चेतना विकास मूल्य शिक्षा संस्कार है। इस प्रकार संस्कार परंपरा और विधि प्रक्रिया के रूप में संस्कार स्पष्ट हो जाता है। यही मानव संचेतना सहज महिमा है। मानव का संपूर्ण संस्कार व प्रमाण जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना ही है। यह निर्भम विधि से न्याय, धर्म, सत्य सहज प्रकाशन है। अर्थात् निर्भम पूर्ण विधि से प्राप्त जानना, मानना, पहचानना और निर्वाह करना स्वयं न्याय, धर्म, सत्य का प्रमाण ही है। यही मानवीयतापूर्ण अभिव्यक्ति, संप्रेषणा और प्रकाशन सहज रूप में व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी है। **(अध्याय: 9(4), पृष्ठ नंबर: 246–247)**
- मानव की पहचान, महापुरुषों की पहचान

आदिकालीन और अभी अत्याधुनिक कालीन मानव प्रकृति आचरण, प्रमाण सम्पूर्ण प्रकार से व्यक्तिवादिता की ओर रही हैं क्योंकि विरक्ति और भक्तिवादी चरित्र भी व्यक्तिवादी होता है। इन दोनों के बीच में जो विविध प्रकार के इतिहास हैं वे सब प्रकारान्तर में भ्रमात्मक कथाएँ हैं। मानव अभी तक जितने भी समुदाय परंपरा में अपने को पहचानता है, इन सबका एक ही 'अभिशाप' रहा है कि अस्तित्व में अपने को अविभाज्य रूप में समग्रता के साथ दर्शन नहीं कर पाना। दूसरा अभिशाप स्वयं को पहचानने की इच्छा रहते हुए भी अपूर्ण रह जाना इसका स्पष्ट स्वरूप यही है कि सच्चाई को पहचानने की गवाही नहीं दे पाना। सामान्य लोग जिन्हें स्वयं को पहचानने की गंध भी

नहीं रहती, ऐसे लोग इस मुद्दे पर कई महापुरुषों को आत्मदर्शी, ज्ञानी मान चुके रहते हैं। उल्लेखनीय बात यही है कि सामान्य जन मानस जब कभी भी आस्था का प्रदर्शन कर पाता है, तो उसके मूल में सब मनोकामनाओं के सफल होने की अपेक्षा पाई जाती है। मनोकामनाएँ अधिकांश भय, प्रलोभन, दरिद्रता, पर–पीड़ा, प्राकृतिक विपदा, रोग दुश्मनों का नाश से संबंधित हैं, इनको आज के लोक मानस में सर्वेक्षण कर सकते हैं। सुविधा संग्रह में सफलता, आजीविका, अध्ययन कार्यों में सफलता, आजीविका में वरिष्ठता, अधिकारों में अधिकाधिक शक्ति (अधिकार) प्राप्त होने के क्रम में भी मनोकामनाओं को सर्वेक्षित किया गया है। सर्वेक्षण करने पर प्रमाणों का पा सकते हैं। यह कोई ऐसा मुद्दा नहीं हैं, जिसके आधार पर आत्मदर्शिता अथवा परम ज्ञान, परम विचार, परम आचरण को समझा जा सकें। इसलिए इन सभी का आधार केवल परंपरागत पावन ग्रंथ शब्द व शास्त्र प्रमाण ही रह जाते हैं। व्यक्ति वर्तमान में प्रमाण नहीं हो पाता है। पावन ग्रंथों की अगम्यता अर्थात् सर्वसुलभ होने में शंकाएँ सदा बनी रहती हैं। इस प्रकार स्वयं पर विश्वास का निश्चित अध्ययन और निश्चित परपंरा नहीं हो पाई। यही मानव सहज आकांक्षा रहते, अपूर्ति की पीड़ा है।

इसका निराकरण और अस्तित्व में अविभाज्य रूप में पहचानने, निर्वाह करने, जानने, मानने की विधि जीवन विद्या से, अस्तित्व दर्शन से और मानवीयता पूर्ण आचरण से परिपूर्ण हो जाता है। यही जागृतिपूर्ण परंपरा का भी वैभव हैं। जीवन को समझने के लिए अर्थात् जानने, मानने, के लिए अस्तित्व में मानव सहज संचेतना क्रम में जीवन की सभी क्रियाओं को पहचाना जा सकता है। जिस पर विश्वास होना सहज होता है। क्योंकि सहज में ही संचेतना से जागृति तक, जागृति क्रम स्वयं में, से, के लिए स्पष्ट हो जाता है। इसका पहला सिद्धांत हैं। ''मानव ही अस्तित्व में दृष्टा हैं।" दूसरी भाषा में, अस्तित्व में प्रत्येक नर–नारी समझदारी पूर्वक **दृष्टा पद** में ही है। इसका पहला प्रमाण प्रत्येक मानव में कल्पनाशीलता, कर्मस्वतंत्रता सहज क्रियाशीलता हैं। कल्पनाशीलता के आधार पर ही मानव अज्ञात को ज्ञात करने, अप्राप्त को प्राप्त करने आशा, विचार, इच्छाओं को अपने में ही सर्जित होता हुआ समझता है। यह अपने में, अपने से एवं अपने लिए तैयार करना होता है। यही जागृति की ओर सहज परिवर्तन का आधार बिन्दु है। **(अध्याय:9(5), पृष्ठ नंबर:249–250)**

- मानव में, से, के लिए जानने, पहचानने, निर्वाह करने की संपूर्ण वस्तु सत्ता में संपृक्त जड़–चैतन्य–प्रकृति हैं और अस्तित्व सहज, सह–अस्तित्व रूपी गति विधियाँ है। सह–अस्तित्व रूपी गति ही सत्ता में चारों अवस्था सहज प्रकृति अविभाज्य रूप में वर्तमानित होना समझ में आता है। अस्तित्व में मानव अनुभवपूर्वक **दृष्टा पद** में हैं, सह–अस्तित्व नित्य वर्तमान है, यही समझ में आने का आधार व स्रोत हैं। **(अध्याय: 9(5), पृष्ठ नंबर: 251)**
- सत्ता में संपृक्त प्रकृति में विकास, जीवन, जागृति, रासायनिक–भौतिक रचना–विरचना हर मानव में, से, के लिए अध्ययनगम्य होता हैं। इसका मूल कारण अस्तित्व में अविभाज्य वर्तमान मानव का जागृति पूर्वक **दृष्टा पद** में होना ही हैं। यही मौलिकता है। यही मुख्य बिंदु है। मानव जागृत होने की आवश्यकता को, आकार और प्रक्रिया को,

उदयशील उदगमशील बनायें रखता है। इसी की गवाही अज्ञात को ज्ञात करने, अप्राप्त को प्राप्त करने की कल्पना, इच्छा, विचार, साक्षात्कार, बोध व अनुभव के रूप में देखा जाता है। अति महत्वपूर्ण बात यह है कि ऐसी अभीप्सा प्रत्येक मानव में प्रकारान्तर से देखने को मिलती हैं। इसी आधार पर प्रत्येक मानव में शुभ चाहने का अधिकार समान रूप में विद्यमान हैं। यह समझ में आने के पश्चात् ही इसकी भरपाई जो अज्ञात है, वह ज्ञात हो सकता है। जो अप्राप्त हैं, वह प्राप्त हो सकता है। ऐसी स्थिति को सर्व सुलभ करने के लिए परम्परा जागृत होना अपरिहार्य हैं। **(अध्याय: 9 (5), पृष्ठ नंबर: 251–252)**

- जागृत मानव परम्परा का प्रभाव शिक्षा–संस्कार, संविधान और व्यवस्था के रूप में देखने को मिलता है। वर्तमान परंपरागत विधियों से अप्राप्ति की प्राप्ति तथा अज्ञात का ज्ञात होना संभव नहीं हैं। इसलिए अस्तित्व सहज वैभव का चिंतन, साक्षात्कार, विचार, अनुभव, व्यवहार, व्यवस्था, संविधान, अध्ययन बनाम शिक्षा–संस्कार– बनाम दर्शन–ज्ञान सहज रूप में जीना, क्रियारत रहना अनिवार्य हो गया। इस क्रम में अस्तित्व दर्शन, जीवन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण, मानवीय व्यवस्था, मानवीय संविधान, मानवीय शिक्षा, मानवीय संस्कार सर्व सुलभ होने का मार्ग प्रशस्त होता है। इन मूलभूत सिद्धांतों को हृदयंगम करना एक आवश्यकता है। अनुभव पूर्वक मानव के **दृष्टा पद** में होने की साक्षी में ही मूलभूत सिद्धांतों को समझा गया है।

  1. मानव जाति एक, कर्म अनेक।
  2. मानव धर्म एक, मत अनेक।
  3. सत्ता व्यापक रूप में एक, देवता अनेक।
  4. यह धरती एक (अखण्ड राष्ट्र) राज्य अनेक।

  उक्त चार एकता और अनेकता का सिद्धांत समझ में आता है। अस्तित्व सहज प्राकृतिक रूप में अथवा सह–अस्तित्व के रूप में एकता अपने आप स्पष्ट है। मानव समुदाय की भ्रमित मान्यताओं एवं इन यथार्थताओं में मतभेद ही समस्या के रूप में स्पष्ट है। **(अध्याय:9 (5), पृष्ठ नंबर:252–253)**

- प्रत्येक एक अपने वातावरण सहित सम्पूर्ण हैं। यह धरती भी अपने वातावरण सहित सम्पूर्ण हैं। यह भौतिक–रासायनिक समृद्धि योग्य इकाई अपनी स्वभाव गति शून्याकर्षण पूर्वक विकास क्रम में हैं। यह स्वयं में एक व्यवस्था है और सौर व्यूह अथवा अंनत सौर व्यूह रूपी समग्र में भागीदार हैं, यह प्रत्येक मानव के सम्मुख हैं। मानव के **दृष्टा पद** में होने के फलस्वरूप इसे समझना भी सरल है। धरती की सतह का स्वरूप देखने पर समुद्र और समुद्र से घिरा हुआ भूखंड दिखाई पड़ता है, जिसमें जंगल, पहाड़, नदी–नाला स्पष्ट रूप में विद्यमान है। **(अध्याय: 9(5), पृष्ठ नंबर:253)**

- प्रत्येक अंग–अवयवों का अपना–अपना आकार वंश की प्रधान पहचान है। इस पहचान के साथ उसका कार्य जीवन के संयोग से ही संपन्न होता हुआ समझ में आता हैं। जीवन, जीव शरीरों में, आशा का प्रसारण करता हुआ देखने को मिलता हैं। प्रत्येक जीव जीने की आशा से ही जीता हुआ मिलता हैं। ज्ञानावस्था सहज मानव जीवन में आशा, विचार, इच्छा, ऋतम्भरा और प्रमाण जैसे शक्तियों का क्रियाकलाप समझने को मिलता हैं। इसे समझने वाला भी मानव ही हैं। मानव के **दृष्टा पद** में होने का प्रमाण जीवन और शरीर संयुक्त रूप में सिद्ध होता हैं। समझने के क्रम में ही अज्ञात को ज्ञात एवम् अप्राप्त को प्राप्त करने के कार्यकलापों को मानव ही सहज रूप में संपन्न किया करता हैं। दृश्य के रूप में अस्तित्व ही नित्य वर्तमान हैं। अस्तित्व में चारों अवस्थाएँ अपने में एक अनुपम अभिव्यक्ति हैं। जीवों का कार्यकलाप उन के प्रजाति वंश के अनुसार निश्चित कार्य रूप में रहता हैं। यही संतुलन का तात्पर्य है। मानव अस्तित्व में **दृष्टा पद** में होते हुए भी अभी तक मानव का कार्यकलाप अनिश्चित है। मानव शरीर भी अवयवों के संतुलित रूप में ही प्रकाशित हैं। इस प्रकार प्राण कोषाओं से सभी वनस्पतियाँ जीव और मानव शरीर की रचनाएँ होते हुए समझ में आती हैं। जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में जीने वाले जीव एवम् मानव शरीर में सप्त धातुएँ देखने को मिलती हैं। सप्त धातुओं के सर्वोच्च संतुलित रचना मानव शरीर ही हैं। स्वेदज व असमृद्ध मेधस युक्त रचनाओं को जीवन चलाता नहीं हैं अथवा वे चलाने योग्य नहीं होतें। उनमें सप्त धातुएँ देखने को नहीं मिलती हैं। वे रचनाएँ प्राण कोषाओं से ही रचित रहती हैं। झाड़ व पौधे सभी प्राण कोषाओं की ही रचना होते हुए इनमें सप्त धातु नहीं होते। इन्हीं सब प्रमाणों के साथ जीवन और शरीर का संयोग उसी शरीर से संयोगित हो पाता हैं, जिस शरीर की संरचना में सप्त धातुएँ अंग अवयवों के संतुलन के अर्थ से रचित रहते हैं तथा समृद्ध मेधस व समृद्धिपूर्ण मेधस की रचना संपन्न होती हैं। ऐसे ही शरीर को जीवन संचालित करता हुआ देखने को मिलता हैं। इस क्रम में जो भी प्राण कोषाएँ देखने को मिलती है, वे सब विधिवत् रासायनिक वैभव के रूप में दिखते हैं। इसके साथ कृत्रिमता नहीं हो पाती। जो कुछ भी कृत्रिमता का आकार दे पाना मानव से बन जाता हैं वह सब पदार्थावस्था सहज वस्तुओं के रूप में ही देखने को मिलता हैं। रासायनिक क्रिया प्राकृतिक ही होती हैं, कृत्रिम होती नहीं हैं इसलिए प्राण कोषाएँ प्राकृतिक ही होती हैं, कृत्रिम नहीं होती है। प्राण कोषाओं से रचित रचनायें स्वाभाविक रूप में प्राकृतिक है, कृत्रिम नहीं। **(अध्याय: 9(9), पृष्ठ नंबर: 298–299)**
- अस्तित्व को सह–अस्तित्व के रूप में ध्यान में लाने पर पता चलता हैं कि जागृति पूर्वक मानव ही अस्तित्व में दृष्टा है। **दृष्टा पद** की संभावना में प्रत्येक मानव है, इसका साक्ष्य व्यवहार में प्रमाणित होने वाली कल्पनाशीलता और कर्म स्वतंत्रता ही है। इस बात का विश्लेषण हो चुका है कि मानव बहु–आयामी अभिव्यक्ति हैं। सभी आयामों, कोणों, दिशाओं और परिप्रेक्ष्यों में मानव का व्यक्त होना अवश्यंभावी और नियति है। इसमें सफलता का संपूर्ण स्रोत केवल मानव परंपरा, अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में जागृति हैं और यह मानव जीवन का चिरंतन सत्य है। इसके आधार पर अर्थात् जागृति सहजता के आधार पर सम्पूर्ण आयामों, कोणों, दिशाओं, परिप्रेक्ष्यों में की गई अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन, कार्य–व्यवहार ही समाधान के रूप में प्रमाणित है यह स्पष्ट हो चुका हैं। इन तथ्यों

से यह निर्धारित होता हैं कि स्थिति और गति में पूरकता विधि से संपन्न किया गया कार्य–व्यवहार समाधान पूर्वक ही सफल होना पाया जाता हैं। सफलता का तात्पर्य समाधान, समृद्धि, अभय और सह–अस्तित्व के फलित होने से है। सफलता का दूसरा स्वरूप अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी प्रमाणित होने से है। यह समझदारी पूर्वक किया गया कार्य–व्यवहार का फलन, इन स्वरूपों में वर्तमान और प्रमाणित होना पाया जाता है। इससे यह पता लगता हैं कि समझकर किया गया कार्य व्यवहार सफल होना संभव हैं, सफल होना आवश्यक है, सफल होना सार्थक है और अनिवार्य है। **(अध्याय:9(10), पृष्ठ नंबर:325–326)**

- सम्पूर्ण अभिव्यक्ति, सत्ता में संपृक्त प्रकृति के रूप में नित्य वर्तमान है। वर्तमान, त्रिकालाबाध सत्य है। वर्तमान में सह–अस्तित्व में अनुभव प्रतिष्ठां वश **दृष्टा पद** व जागृतिपूर्ण मानव परंपरा है। यह प्रमाणित होना ही सत्य दृष्टा होने का प्रमाण हैं। व्यापक रूपी सत्ता में संपृक्त प्रकृति में ही जीवन है और जीवन में ही जागृति प्रमाणित होता है। यह एक सहज कार्य के रूप में प्रमाणित हो चुका है। इस धरती पर मानव, शरीर और जीवन के संयुक्त रूप में प्रकाशमान है और अभिव्यक्ति शील हैं। विकास क्रम में संपूर्ण वनस्पति जगत प्राणावस्था के रूप में व्यक्त हैं। यह भौतिक वस्तु की महिमा हैं, यह समझ में आ चुका है। विकास, परमाणु में होना देखा गया है। ऐसे परमाणुओं में, से चैतन्य पद में संक्रमित होने के उपरान्त ही 'जीवन' है। यह 'जीवन' अपनी महिमा को जीवनी क्रम में संपूर्ण जीवों के रूप में दिखता है। जागृति क्रम में मानव भी जागृति पूर्वक एक अभिव्यक्ति है। इस प्रकार सत्ता में संपृक्त प्रकृति चार अवस्थाओं में व्यक्त है। इसका नामकरण पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था और ज्ञानावस्था है। **(अध्याय: 9 (12), पृष्ठ नंबर:358)**

संदर्भ: व्यवहारात्मक जनवाद

(**संस्करण**: 2009, **मुद्रण**: 2017)

- सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व–दर्शन, ज्ञान, **दृष्टा–पद** प्रतिष्ठा का द्योतक है। जीवन ज्ञान स्व और सर्वस्व को प्रमाणित करने की प्रतिष्ठा है। स्व अपने आप में जीवन इकाई के रूप में प्रतिष्ठा है। यही चैतन्य इकाई है। यही गठनपूर्ण परमाणु है यही अक्षय बल, अक्षय शक्ति सम्पन्न इकाई है। रासायनिक भौतिक वस्तुओं से रचित प्राणकोषा व प्राणकोषा से रचित सप्त धातु रचित शरीर जिसमें समृद्ध मेधस तंत्र का होना पाया जाता है। को संचालित करते हुए जागृति को प्रमाणित करना ही जीवन का उद्देश्य है। इस क्रम में मानव परम्परा सत्य कल्पना, आकांक्षा और सत्य के प्रति आश्वस्त होने का प्रयास मानव कुल में प्रचलित रहे आया। क्रम से आकांक्षाएं विचारों में, विचार तर्क में, तर्क के अनंतर आस्था में प्रवृत होता ही आया है। **(अध्याय: 3, पृष्ठ नंबर:51–52)**
- शरीर के साथ आयु मर्यादा की गणना हो पाती है, शरीर परिणाम कारी होना स्पष्ट है। आयु मर्यादा हमेशा प्रभावशील रहता ही है। इसी के साथ कार्य प्रवृत्तियाँ मेधस तंत्र द्वारा संवेदनशील और संज्ञानशील कार्यक्रमों को स्पष्ट कर देती है। जीवन में ही संवेदनशीलता, संज्ञानशीलता का आस्वादन हो पाता है। संज्ञानशीलता जीवन का स्वत्व होना पहले से ही सुस्पष्ट हो चुका है। समझदारी अर्थ स्वीकृति के साथ जीवनगत होना, जीवन ही **दृष्टा पद** में होना इसलिए दृष्टा (जीवनएवं एवं शरीर का संयुक्त रूप में), कर्ता, भोक्ता होना देखा गया है। **(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर: 69)**
- **दृष्टापद** प्रतिष्ठा केरूप रूप में अनुभूति जीवन में, से, के लिए जीवन ज्ञान सम्पन्न होना ही है। सह अस्तित्व दर्शन ज्ञान का मतलब यही है। इसी के क्रियान्वयन विधि से अखंडता सार्वभौमता का अनुभव होना समाधान है और समाधान का अनुभव होता है, यही सुख है यही मानव धर्म है। मानव धर्म विधि से जीता हुआ परिवार से विश्व परिवार तक जीवनाकांक्षा मानवाकांक्षा सहज रुप में ही सबके लिए सुलभ रहती है। इसी आशा में मानवकुल प्रतीक्षारत है तथा इसे सफल बनाना मानव का ही कर्तव्य दायित्व है। इस जिम्मेदारी को स्वीकार करने के लिए लक्ष्य सम्मत परिवार जनचर्चा हर मानव परिवारों में, समुदायों में, सभाओं में आवश्यक है। चर्चा अपने में लक्ष्य के लिए आवश्यक प्रक्रिया, प्रणाली और नीतिगत स्पष्टता के लिए होना सार्थक है। प्रक्रिया का तात्पर्य निपुणता, कुशलता, पांडित्य पूर्वक किए जाने वाली कृतकारित अनुमोदित कार्यों से है। **(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर:74–75)**
- मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद के अनुसार अभ्यास दर्शन सर्वमानव के लिये अध्ययन के अर्थ में प्रस्तुत है। अभ्यास दर्शन अपने में कायिक, वाचिक, मानसिक, कृत, कारित, अनुमोदित क्रियाकलापो में सार्थकता का प्रतिपादन है। ''अभ्यास दर्शन'' समझदारी के लिए अभ्यास को स्पष्ट करता है। एवं समझने के उपरान्त समझदारी को प्रमाणित करने की अभ्यास विधियो का अध्ययन कराता है। अध्ययन होने का प्रमाण अनुभव मूलक विधि से प्रमाणित होने का प्रतिपादन है। अनुभव सहअस्तित्व में होने का स्पष्ट अध्ययन करा देता है, बोध करा देता है।

इससे मानव परम्परा में प्रमाणित होने का मार्ग प्रशस्त होता है। इसमें जीवन समुच्चय का और दर्शन समुच्चय का आशय सुस्पष्ट हो जाता है। जीवन समुच्चय अपने में **दृष्टा पद** प्रतिष्ठा सहित कर्ता–भोक्ता पद में प्रमाणित होने का बोध होता है। सम्पूर्ण अस्तित्व ही जीवन के लिए दृष्य रूप में प्रस्तुत रहता है। सम्पूर्ण दृष्य व्यवस्था के रूप में व्याख्यायित है। नियम–नियंत्रण–संतुलन ही इसका सूत्र है। नियम की व्याख्या सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व में प्रत्येक एक एक की यथास्थिति के आधार पर निश्चित आचरण ही व्याख्या है। ऐसा निश्चित आचरण ही हर इकाई का त्व है। ऐसी यथा स्थितियाँ और आचरण परिणामानुषंगी विधि से, बीजानुषंगीय विधि से एवं आशानुषंगीय रूप में स्पष्ट होता हुआ देखने को मिलता है। अभ्यास दर्शन ऐसी स्पष्टता को स्पष्ट रूप में अध्ययन करा देता है। सभी स्पष्टताएँ नियम, नियंत्रण, सन्तुलन से गुथी हुई के रूप में होना पाया जाता है। इस भौतिक रासायनिक रूपी बड़े छोटे रूप में होना पाया जाता है। होना ही अस्तित्व है। मानव भी जड़ चैतन्य प्रकृति के रूप में होना अध्ययनगम्य है। इसी आधार पर चैतन्य प्रकृति में **दृष्टा पद** प्रतिष्ठा होना, इसके वैभव में ही **दृष्टा–कर्ता–भोक्ता** पद का प्रमाण प्रस्तुत करना ही जागृति का प्रमाण है। अभ्यास दर्शन इन तथ्यो को अध्ययन कराता है। इसमें मुद्दा यही है कि हमें सम्पूर्ण अध्ययन करना है तो मध्यस्थ दर्शन ठीक है नहीं करना है तो मध्यस्थ दर्शन की जरूरत नहीं है। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर: 107)**

- हर जलवायु में विभिन्न प्रकार के आदमी होते है अर्थात मानव शरीर का रचना विभिन्न नस्ल, रंग, रूप का होता है। यह बात इसी धरती पर गवाहित हो चुकी है। इसी प्रकार अन्य धरती पर भी हो सकती है। जागृति की महिमा सार्वभौम व्यवस्था अखंड समाज का प्रमाण किसी अन्य धरती अथवा अनंत धरती में भी मानव का उदय हो चुका हो, उन सबका स्वरूप एक ही हो जाता है यानि मानसिक स्वरूप, क्योंकि उद्देश्य एक ही बनता है। **दृष्टा कर्ता भोक्ता पद** निश्चित हो जाता है। इन तथ्यो से हमें विदित होता है हम मानव लक्ष्य सम्पन्न विधि से जीने के लिए जागृति एक मात्र सहारा है। मानव जागृति सहित सहअस्तित्व रूप में नित्य वर्तमान है ही। वर्तमानता सदा–सदा के लिए नित्य है। इस विधि से हम सर्वशुभ कल्पना, परिकल्पना और प्रमाण तक की स्थिति में आते है कि परिवार मूलक स्वराज्य विधि से विश्व मानव परिवार सभा को अभी तक वैभवित न होते हुए, वैभवित होने की संभावना मानव मन तक पहुंचता है। सम्भावना तक स्वीकृति होती है। आगे मानव की चाहत बलवती होने की स्थिति में व्यवहार में वर्तमान हो सकता है यही आवश्यकता हर मानव में विद्यमान है। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर: 127–128)**

संदर्भ: अनुभवात्मक अध्यात्मवाद

(**संस्करण**: 2009)

- पहले इस बात को भी स्मरण दिलाया गया है कि मानवेत्तर प्रकृति में भी पहचानने, निर्वाह करने की प्रक्रिया विधि नित्य वर्तमान है । इसी विधि सहज वैभव का प्रमाण पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्थाओं में देखने को मिलता है। देखने का तात्पर्य समझने से है । मानव ही अस्तित्व में **दृष्टापद** प्रतिष्ठा को प्रमाणित करता है, प्रमाणित करने योग्य है, प्रमाणित करने के लिये बाध्य है ही। समझना ही बाध्यता है। (**अध्याय**: 2, **पृष्ठ नंबर**: 18)
- मानव ही **दृष्टा पद** में होने के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है मानव ही हर आयाम, कोण, दिशा, परिप्रेक्ष्य और सर्वदेश काल में अस्तित्व सहज सह–अस्तित्व में, सह–अस्तित्व सहज सबंधों में, सबंध सहज मूल्यों में, मूल्य सहज अनुभवों में बनाम, मूल्यांकन में ओतप्रोत रहने का नित्य अवसर सर्व समीचीन है । यहाँ इस तथ्य को इंगित कराने का उद्वेश्य यही है सर्वमानव अनुभव मूलक विधि से ही नियम–न्याय–समाधान सत्य में, से, के लिये प्रमाणित होना देखा गया । यह सर्वमानव में स्वीकृत है। इसी आधार पर अनुभवात्मक अध्यात्मवाद को प्रकाशित, संप्रेषित, अभिव्यक्त करने में पारंगत होने के आधार पर संप्रेषित की गई। इससे मानव में, से, के लिये अनुभवमूलक विधि से जीने की विधि को विज्ञान और विवेक सम्मत विधि से अध्ययन पूर्वक सम्पन्न करना सहज रहेगा। यही इस प्रस्तुति की शुभकामना है । (**अध्याय**: 2, **पृष्ठ नंबर**:20–21)
- आशा, विचार, इच्छा रूप में बन्धनों को देखा जाता है। जीवन में ही आशा, विचार, इच्छाएँ क्रियाशील रहती हैं। आशा–पूर्ति, विचार–पूर्ति एवं इच्छापूर्ति ही बन्धन का स्वरूप है। भ्रमवश सम्पूर्ण आशा, विचार, इच्छाओं को शरीर–कार्य, शरीर सुविधा, शरीर भोगों के आपूर्ति के लिये दौड़ा लिया । मानव में कर्म स्वतंत्रतावश वैज्ञानिक उपलब्धियों के रूप में यांत्रिकता प्रमाणित हो गई । इन यंत्रों को सदुपयोग करने के स्थान पर अपव्यय करना मानव परंपरा में बाध्यता के रूप में देखा गया, आवश्यकता माना गया है । इसी के परिणामस्वरूप धरती का स्वस्थ मुद्रा अस्वस्थ मुद्रा के रूप में परिणित हो । साथ ही जितने भी जीवन अनुभवमूलक विधि से जागृति होने के लिए उम्मीदें लेकर मानव परंपरा में मानव शरीर को संचालित करने के लिये तत्पर रहते हैं उन सबका जीवन आशा अथवा जीवन अपेक्षा ध्वस्त हो जाता है । इसके मूल में भ्रमित मानव परंपरा ही कारक तत्व है । **इस प्रकार से भटकता हुआ जीवन संतुष्टि स्वाभाविक रूप में भोग मानसिकता को न्याय मानसिकता में, संग्रह मानसिकता को समृद्धि मानसिकता में, संघर्ष मानसिकता को समाधान मानसिकता में, द्रोह मानसिकता को पूरक मानसिकता में, विद्रोह मानसिकता को धीरता रूपी मानसिकता में, शोषण मानसिकता को विनियम मानसिकता में, युद्ध मानसिकता को सह–अस्तित्व मानसिकता में, शासन मानसिकता को सार्वभौम व्यवस्था मानसिकता में, समुदाय मानसिकता को अखण्ड समाज मानसिकता में प्रयोजित होना अनुभव मूलक विधि से सहज संभावना है** । यह

निरंतर समीचीन है । यही ''अनुभवात्मक अध्यात्मवाद'' (आदर्शवाद) का तात्पर्य है । आदर्श किसका है, भ्रमित मानव का ।

ऊपर कहे सम्पूर्ण परिवर्तन बिन्दुएँ सकारात्मक होने के कारण जीवन सहज रूप में स्वीकार है । यह सब नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय, धर्म, सत्य से ही सूत्रित वैभव है। **दृष्टा पद प्रतिष्ठा** जीवन में ही निहित है न कि शरीर में। इस तथ्य को पहले इंगित करा ही चुके हैं । इसलिये ''अनुभवात्मक अध्यात्मवाद'' परिचय विधि से ही आवश्यकता को उद्गमित करता है । **(अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर: 43–44)**

- मुख्यत: न्याय, धर्म, सत्य रूपी दृष्टियों की क्रियाशीलता वृत्ति में एवं फलन स्वरूप इनका साक्षात्कार चित्त में, बुद्धि में बोध और अनुभव की स्वीकृति, आत्मा में इनका अनुभव और अनुभव बोध तथा साक्षात्कार की पुष्टि चिंतन में सम्पन्न होना ही अनुभवमूलक जागृतिपूर्ण स्थिति गति होना स्पष्ट है । अतएव जीवन को विधिवत् चेतना विकास मूल्य शिक्षा विधि से मध्यस्थ दर्शन सह–अस्तित्ववाद का अध्ययन एवं समझ लेना जीवन ज्ञान का तात्पर्य है । जीवन ही **दृष्टा पद** में होने के कारण अस्तित्व सहज सम्पूर्ण दृश्य का दृष्टा होना सहज है । इस प्रकार अनुभव करने वाली वस्तु जीवन है । अनुभव करने योग्य वस्तु अस्तित्व सहज सह–अस्तित्व है । प्रमाणित करने योग्य वस्तु हरेक मानव है । प्रमाणित होने के लिये वस्तु अखण्ड समाज और सार्वभौम व्यवस्था है । अस्तित्व सहज सह–अस्तित्व में अनुभव ही परम सत्य में अनुभव । **(अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर: 75–76)**
- **दृष्टा पद** प्रतिष्ठा की अभिव्यक्ति जागृत जीवन एवं जागृति पूर्ण मानव परंपरा में प्रमाणित होना ही ज्ञानावस्था की मौलिकता है । अर्थात् जागृतिपूर्ण जीवन मानव परंपरा में ही व्यक्त होता है । इसी अभिव्यक्ति में **दृष्टा पद** प्रतिष्ठा प्रमाणित होता है । **दृष्टा पद** जागृति का स्वरूप है । शरीर के द्वारा 'जीवन' व्यक्त होना जीवावस्था से ही प्रमाणित है जबकि मानव शरीर द्वारा जीवन लक्ष्य सहज जागृति प्रमाणित हो जाता है । इस अभिव्यक्ति में मध्यस्थ सत्ता, मध्यस्थ क्रिया, मध्यस्थ बल, मध्यस्थ शक्ति, मध्यस्थ जीवन सहज प्रमाण ही मानव परंपरा का एकमात्र सहज मार्ग है । अतएव मानव परंपरा की अनिवार्यता सहज ही विदित होता है । अस्तित्व स्वयं नित्य सह–अस्तित्व है इसलिये जागृत जीवन सह–अस्तित्व में तृप्त होता है । ऐसी तृप्ति का बहुमुखी अभिव्यक्ति ही परंपरा के नाम से ख्यात होता है । अस्तु, मध्यस्थ जीवन, मध्यस्थ क्रिया, मध्यस्थ सत्ता, बल और शक्ति सहज वैभव के संबंध में प्रतिपादन और व्याख्याएँ प्रस्तुत है । यही मध्यस्थ दर्शन सह–अस्तित्ववाद है। **(अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर: 102–103)**
- 'दिव्य मानव' पद में **दृष्टा–पद** प्रतिष्ठा सार्थक अर्थात् सम्पूर्ण अभिव्यक्ति हो जाता है । यही 'दिव्यमानव'–देवमानव और मानव के लिये प्रेरक होते है । सभी दिव्यमानव का समान कारकता, प्रेरकता प्रमाणित होती है । क्योंकि सम्पूर्ण सार्थक प्रेरणाएँ मानवापेक्षा, जीवनापेक्षा के अर्थ में ही होता है । यही 'दिव्यमानव' अमानव को मानव पद में स्वत्व, स्वतंत्रता अधिकार पूर्वक जीने की कला सहित प्रेरक होना पाया जाता है। इस धरती में एक भी आदमी पशु

मानव–राक्षस मानव पद को स्वीकारते नहीं है । यही जागृति पूर्णता की अपेक्षा बनी ही रहती है। जागृति और जागृतिपूर्णता की सहज संभावना जागृत परंपरा के रूप में समीचीन रहना आवश्यक है । अनुसंधान के रूप में समीचीन रहता ही है । **(अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर: 106)**

- जीवन में आत्मा अविभाज्य स्वरूप है । यह मध्यस्थ क्रिया होने के कारण ही जीवन सहज संपूर्ण क्रियाकलाप को नियंत्रित, संतुलित और प्रेरित करता ही है । यह भी स्पष्ट हो चुका है आत्मा ही **दृष्टा पद** प्रतिष्ठा सहित अनुभव क्रिया के रूप में वैभवित होना फलस्वरूप जीवन के क्रियाकलापों में अनुभव ही प्रभावशील होना देखा गया है । यही अनुभव जागृतिपूर्णता का स्वरूप होने के कारण स्वाभाविक रूप में अनुभव को संप्रेषित करना सहज सुलभ, अनिवार्य और परम प्रमाण होना स्पष्ट है । **(अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर: 106)**
- गठनशील से गठनपूर्ण परमाणु बनना ही संक्रमण है । संक्रमण का स्वरूप और कार्य निश्चित बिंदु के पहले और बाद की मध्य रेखा ही है जिसकी लम्बाई–चौड़ाई–मोटाई कुछ भी नहीं रहती है । इस संक्रमण गामी परिणाम को केवल मानव अपने **दृष्टा पद** प्रतिष्ठा महिमावश समझना परम सहज और परम आवश्यक है । यह संक्रमण के अनन्तर जीवन सहज कार्य प्रतिष्ठा को किसी भी यंत्र से या मानव आँखों से देखना सम्भव नहीं है क्योंकि आँखों से गणितीय भाषा अधिक है अर्थात् आँखों से जितना इंगित हो पाता है उससे अधिक गणितीय भाषा से इंगित होना देखा गया है। गणितीय भाषा से अधिक गुणात्मक भाषाओं से परस्पर मानव में इंगित होना देखा गया है और गुणात्मक भाषा से तथा गणितात्मक भाषा से जितना इंगित हुआ है उससे अधिक और सम्पूर्णता कारणात्मक भाषा से इंगित होना पाया गया है । इंगित होने का तात्पर्य, प्रयोजन सहित वस्तु स्वरूप सर्वस्व को जानना–मानना और पहचानने से है इसलिए मानव भाषा कारण–गुण–गणितात्मक है। **(अध्याय: 5, पृष्ठ नंबर: 128–129)**
- सर्वमानव पीड़ा से मुक्ति चाहता ही है । यही जागृति सहज अपेक्षा का स्रोत और सम्भावना है । जीवन सहज क्रियाकलापों में, से न्याय, धर्म, सत्य का साक्षात्कार और दृष्टा होना और उसका प्रमाण सिद्ध होना ही सम्पूर्ण जागृति है । **दृष्टापद** में होने वाली सम्पूर्ण क्रियाकलाप जीवन सहज विधि से जानने–मानने–पहचानने–निर्वाह करने के रूप में होना पाया गया है । जानने–मानने की सम्पूर्ण वस्तु जीवन ज्ञान, सह–अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान ही है । अस्तित्व में अनन्त ग्रह–गोल व्यापक वस्तु में समायी हुई है – जिनका दृष्टा केवल मानव ही है । भले ही कैसे हैं, कितने है, क्या है ? इन तथ्यों का स्पष्टीकरण न हो। इसी प्रकार धरती में चारों अवस्थाओं के यथा पदार्थ, प्राण, जीव व ज्ञानावस्था सहज वस्तुओं का दृष्टा भी मानव ही है । प्रकारान्तर से इन सभी चीजों को हर मानव देखता ही है । साथ–साथ हर कार्यशील वस्तुओं को व्यापक में समायी हुई देखना समझना समीचीन है। जितने भी अचल वस्तुएँ हैं वे सब धरती के साथ ही गतिशील रहना देखने को मिलता है । धरती स्वयं व्यापक में समायी हुई होना कल्पना में आता है, अध्ययन से स्पष्ट होता है । कल्पनाएँ जीवन सहज कार्य महिमा है । कल्पना में सम्पूर्ण अस्तित्व समाने की क्रिया स्पष्ट हुई । कल्पना का तात्पर्य अस्पष्ट आशा,

विचार, इच्छा का ही गतिशीलता है । इस प्रकार मानव की कल्पना से स्पष्टीकरण की ओर ही जागृति चिन्हित हो पाता है। **(अध्याय: 5, पृष्ठ नंबर: 148)**

- आँखों से देखने के क्रम में सारे सानूकुलताएँ अस्तित्व सहज रूप में समीचीन रहते हुए आकार, आयतन का आंशिक भाग आँखों के सम्मुख प्रतिबिम्बित होना स्पष्ट हो चुकी है । आँखों पर प्रतिबिम्बित आकार से अधिक आयतन, आकार और आयतन से अधिक घन रहता ही है । इस विधि से जो हम आँखों से देखते है उसकी सम्पूर्णता आँखों में आती नहीं है । यह रूप के सम्बन्ध में जो तीन आयाम बतायी गई है उसका प्रतिबिंबन और आँखों की क्षमता के संबंध में मूल्यांकित हुई । हर रूप के साथ गुण, स्वभाव, धर्म अविभाज्य रहना स्पष्ट किया जा चुका है । यह भी साथ–साथ हर व्यक्ति में किसी न किसी अंश में गुण, स्वभाव, धर्म को समझने की आवश्यकता–अरमान रहता है । इस विधि से यह स्पष्ट हो गया जितना मानव समझ सकता है वह आँखों में आता नहीं । हर वस्तु आँखों पर होने वाले प्रतिबिम्बन से अधिक है । यही कल्पनाशीलता, तर्क, प्रयोग, अध्ययन और अनुभव का मुद्दा है । अब यह बात सुस्पष्ट हो गई कि देखने का परिभाषा, आशय और सार्थकता समझना ही है, समझा हुआ को समझाना ही है । हर समझ अनुभव की साक्षी में ही स्वीकृत होता है । हर समझ अनुभवमूलक विधि से प्रमाणित हो जाता है। समझने का जो महत्वपूर्ण पात्रता है और अनुभव योग्य क्षमता सम्पन्नता ही है, इन दोनों महत्वपूर्ण क्रिया के आधार पर अभिव्यक्त, संप्रेषित और प्रकाशित होने के आधार पर **दृष्टा पद** प्रतिष्ठा हर व्यक्ति में, से, के लिए जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना नित्य समीचीन है । **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 192–193)**
- मानव के सर्वेक्षण से यह भी पता लगता है कि जीवन क्रिया होते हुए भी कल्पना, विचार, इच्छाओं से तृप्ति पाना संभव नहीं होता है । इन तीनों का सम्मिलित योजना–कार्य योजनाओं को कितने भी विधाओं में प्रयोग किया, इससे किसी एक या एक से अधिक मानव को जीवनापेक्षा व मानवापेक्षा सहज उपलब्धियाँ होना साक्षित नहीं हो पायी । आशा, विचार, इच्छाओं के संयुक्त योजनाओं को मानव में से कोई–कोई विविध आयामों में प्रयोग किया । प्रधानतः युद्ध विधा में, शासन विधा में, व्यापार विधा, शिक्षा विधा में प्रयोग किया गया मानव सहज अपेक्षा द्वय इन सभी कृत्यों से प्रमाणित नहीं हो पायी । मानव इतिहास दस्तावेजों के रूप में जो कुछ भी रखा है, वह सब इसका गवाही है । अतएव 'अनुभवात्मक अध्यात्मवाद' इस आशय की पुष्टि अध्ययन सामान्य योजनाओं का अवधारणा मानव परंपरा में प्रस्थापित करने के लिये प्रस्तुत हुआ है । यह **दृष्टा पद** की ही महिमा है । इसकी गवाही यही है मानव परंपरा में ही विगत की समीक्षा, वर्तमान में व्यवस्था, भविष्य में, से, के लिये व्यवस्थावादी कार्य–योजना मानव परंपरा को सफल बनाने का सुदृढ़ एवं सर्व मानव स्वीकार्य योग्य प्रस्ताव है । सह–अस्तित्व में अनुभव के आधार पर ही यह सम्पूर्ण प्रस्तुति है । **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 193–194)**
- वर्णित ऐतिहासिक विफलताएँ अग्रिम अनुसंधान के लिये आधार होना स्वाभाविक है। इस क्रम में इस तथ्य को अनुभव किया जा चुका है कि आँखों से अधिक कल्पनाशीलताएँ हर मानव में विद्यमान है । गणित भी कल्पनाशीलता का ही प्रकाशन है । संख्या के रूप में हर घटना या रूप और गुणों को बताने के लिये प्रयत्न हुआ ।

गुण ही गति के रूप में होना देखा गया है । गणितीय क्रियाकलाप भी मानव भाषा में गण्य होना पाया जाता है। सर्व मानव में गणना कार्य प्रकट होते ही आया है । ऐसे गणना कार्य को विधिवत् प्रयोग करने के आधार पर रूप सम्बन्धी तीनों आयाम आकार, आयतन, घन को समझने–समझाने का कार्य सम्पन्न होता है । इसी के साथ–साथ गति सम्बन्धी संप्रेषणा भी गणना विधि से लाने का प्रयास हुआ। मध्यस्थ गति गणितीय भाषा में संप्रेषित नहीं हो पायी है। सम–विषमात्मक गतियों को दूरी बढ़ने–दूरी घटने, दबाव और प्रवाह बढ़ने–घटने के साथ परिणामों का आंकलन सहित अध्ययन करने का प्रयास विविध प्रकार से किया गया है । ये दोनों सम–विषम गतियाँ आवेश के रूप में ही गण्य होते हैं जबकि हर वस्तु, हर इकाई, उसके मूल में जो परमाणु है वह अपने स्वभाव गति प्रतिष्ठा में ही उनके त्व सहित व्यवस्था होना पाया जाता है । जो कुछ भी अस्तित्व में त्व सहित व्यवस्था के रूप में व्यक्त है वह सब मध्यस्थ गति के अनुरूप ही कार्यरत होना देखा गया । मानव में इसका कार्य रूप, कार्य प्रतिष्ठा जागृति मूलक विधि से ही स्पष्ट होना देखा गया है। इसका प्रमाण न्याय, धर्म, सत्य मूलक अभिव्यक्ति के रूप में ही प्रमाणित होता है । इनमें से कम से कम न्यायपूर्ण अभिव्यक्ति क्रम में ही मानवत्व को प्रकाशित कर पाता है । न्याय साक्षात्कार के उपरान्त स्वाभाविक रूप में धर्म और सत्य में जागृत होता है अर्थात् प्रमाणित होता है । इसलिये मानवीयतापूर्ण मानव चेतना पूर्ण पद में संक्रमित होना अति अनिवार्य है । इसी आवश्यकता के आधार पर शिक्षा में प्रावधानित वस्तु जागृति पूर्ण रहना आवश्यक है। यही परंपरा का परिवर्तन कार्य है । शिक्षापूर्वक ही सर्वमानव के जागृत होने का मार्ग प्रशस्त होता है। अतएव मध्यस्थ गति मानव का स्वभाव गति के रूप में मानवीयता को प्रमाणित करने के रूप में ही संभव होता है । फलस्वरूप समग्र व्यवस्था में भागीदारी के रूप में प्रामाणिकता और स्वायत्तता के साथ दिव्य मानव प्रतिष्ठा शिक्षा–कार्य और प्रमाण वैभवित रहता है । यही मानव परंपरा का सर्वांग सुन्दर वैभव है । इसे अनुभव मूलक विधि से ही सम्पन्न करना संभव है । यही **दृष्टा पद** परम्परा का भी प्रमाण है । **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 194–195)**

- स्वभाव गति सदा–सदा 'त्व' सहित व्यवस्था के रूप में दृष्टव्य है । स्वभाव गति का तात्पर्य इस बात को भी इंगित करता है कि स्वभाव–धर्म के अनुरूप गति । यही हरेक इकाई में अन्तर सामरस्यता का भी द्योतक है । फलस्वरूप परस्परता में व्यवस्था प्रमाणित होना सहज है । मानव का स्वभाव मानवीयता और उसमें परम श्रेष्ठता के आधार पर धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा, करूणा पूर्ण कार्य–व्यवहार, विचार व अनुभव ही है । यही प्रतिष्ठा मुख्य रूप से **दृष्टा पद** का द्योतक है । **दृष्टा पद** परिपूर्ण समझदारी का ही अभिव्यक्ति संप्रेषणा व प्रकाशन है। ऐसी समझदारी का स्वरूप जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान है । यही **दृष्टा पद** जागृति का सम्पूर्ण अधिकार स्वरूप भी है । इस प्रकार सम्पूर्ण समझदारी का अधिकार सम्पन्न दृष्टा होना देखा गया है । इसी समझदारी में से जीवन ज्ञान के साथ निष्ठा, अस्तित्व दर्शन के साथ निश्चयता और मानवीयतापूर्ण आचरण की अभिव्यक्ति में दृढ़ता पूर्वक व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी प्रमाणित होना सहज है । इस विधि से हर मानव दृष्टा, कर्ता और भोक्ता होना पाया जाता है । **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 195–196)**

- आवर्तनशीलता जीवन सहज अक्षय शक्ति–अक्षय बल का ही महिमा है । इस बीसवीं शताब्दी के दसवें दशक तक जितनी भी परंपराएं स्थापित हुई–पनपी है जिनको हम आस्थावादी और विज्ञान परंपरा कह सकते है । उक्त दोनों से जो कुछ भी कर पाये हैं वह सब कल्पनाशीलता–कर्मस्वतंत्रता चित्रण, स्मरण और भाषाओं के संयोग से व्यक्त हुआ है । इस दशक तक इस धरती पर कहीं भी अनुभव मूलक परंपरा स्थापित नहीं हो पायी है । उसके योग्य विश्व दृष्टिकोण ही उदय नहीं हुआ । अनुभवमूलक प्रणाली की आवश्यकता तब आवश्यक हो गया जब मानव जाति धरती का सर्वाधिक शोषण किया । जैसे वन खनिज अनानुपाती विधि से शोषण किया । जिसके प्रौद्योगिकी परिणामों में प्रदूषण की मात्रा बढ़ती गई । कुछ मेधावियों को इसकी विभीषीकाएँ कल्पना में आने लगी तब अनुभवमूलक ज्ञान दर्शन आचरण की आवश्यकता निर्मित हुई । इसी आवश्यकता के आधार पर अनुसंधान सम्पन्न हुआ । इसमें मुख्य मुद्दा अनुभवों को संप्रेषित करना हुआ । इसका सिद्धान्त यही है मानव में, से, के लिये भाषा से कल्पना, कल्पना से चिन्तन, चिन्तन से अनुभव, अनुभव से प्रमाण विस्तार और स्पष्ट अभिव्यक्ति होना देखा गया । इससे स्पष्ट हो जाता है कि भाषा कल्पना चित्रण यह **दृष्टा पद** का आधार नहीं हो पाई । जबकि अभी तक जो भी अभिव्यक्तियाँ हुई वह इतने तक ही हुई । यह आशा, विचार, इच्छा बन्धन का प्रकारान्तर से किया गया प्रकाशन ही है । यह सब भ्रमित विधि होने के कारण जिसके गवाही के रूप में युद्ध ही प्रधान विकास का आधार मानने के फलस्वरूप भ्रम का साक्ष्य सुस्पष्ट हो जाता है । शांतिवादी कल्पनाएँ जितने भी हो पायी, व्यक्तिवादी होने के कारण परिवार, समाज और व्यवस्था का आधार नहीं हो पाया । भोगवादी परिकल्पना भी व्यक्तिवादी हुई। यह सर्वविदित हैविरक्तिवाद भी एकान्तवाद स्वान्तः सुख रूप में है । इन सबका सार–संक्षेप संघर्ष ही पीढ़ी से पीढ़ी को हाथ लगी । इस दशक में सर्वाधिक लोग संघर्षरत भी हुए। ऐसे अनेकानेक संगठन पूरे धरती पर तैयार हो चुके हैं । कहीं भी राजगद्दी पर कोई बैठा है तो उसका विद्रोही संगठन भी रहा । यह सब इसी की गवाही में है कि हम सार्वभौम व्यवस्था, अखण्ड समाज विधि को पाये नहीं है पाने की इच्छा आंशिक रूप में बना ही रहा । तीसरा मानवापेछा और जीवनापेछा किसी परंपरा में सार्थक नहीं हो पायी इसी कारणवश अनुभवमूलक शिक्षा–संस्कार, व्यवस्था और संविधान को सुस्पष्ट करना एक नियति सहज आवश्यकता रही है । (**अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 196–198**)
- **दृष्टा पद** का सर्वप्रथम उपलब्धि शरीर का दृष्टा होना ही है । शरीर का दृष्टा होने के आधार पर ही ऊपर इंगित किये गये तथ्य स्पष्ट हुआ है । उक्त तथ्यों को हृदयंगम करने से जागृति की संभावना समीचीन होती ही है । इसी आशय से यह अभिव्यक्ति है । दृष्टा होने का सतत फलन यही है हर स्थिति–गति, योग–संयोग, फल–परिणाम परिपाक और प्रवृत्तियों का मूल्यांकन होना सहज हो जाता है । जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान सम्पन्न मानव मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान का मूल्यांकन, अस्तित्व सहज प्रयोजन का मूल्यांकन करता है । यह महिमा अस्तित्व कैसा है स्पष्टतया समझने के उपरान्त सफल हो जाता है और सफल होना देखा गया है । (**अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 203**)

- अस्तित्व सम्पूर्ण सत्ता में संपृक्त सह–अस्तित्व होने के रूप में अपने वैभव को चारों अवस्था में प्रकाशित किया है। यही वर्तमान का मतलब है। जीवन का स्वरूप, स्वीकृति और उसका अनुभव प्रतिष्ठा ही जीवन ज्ञान का तात्पर्य है। अस्तित्व सहज स्वरूप जैसा है इसका स्वीकृति और उसमें अनुभव स्वयं में से स्फूर्त प्रवृत्त सह–अस्तित्व दर्शन का तात्पर्य है । जीवन ज्ञान सह–अस्तित्व सहज के प्रकाश में ही अस्तित्व दर्शन सबको सुलभ होता है । इसलिये जीवन ज्ञान पर बल दिया जाता है । विद्या का तात्पर्य ही ज्ञान है । यहाँ इस तथ्य का भी स्मरण रहना आवश्यक है–जिन बातों को विद्या अथवा ज्ञान आदिकाल से कहते आ रहे हैं वह कल्पना क्षेत्र में ही सीमित रह गया । इसका साक्ष्य यही है जिसको ज्ञान, आत्मा, देवता कहते हुए सम्पूर्ण साधना, उपासना, अर्चना का आधार मान लिया गया है । वह सब मन, बुद्धि का गोचर नहीं है । मन, बुद्धि को जड़ क्रिया मानते हुए ज्ञान चेतना इनके पहुँच से बाहर है ऐसे ही उद्बोधन करते आये । इसके बावजूद बहुत सारे किताब इन्हीं मुद्दे अथवा नाम पर लिखा गया है । उल्लेखनीय तथ्य यही है कि जीवन ज्ञान – जीवन में, से, के लिये ही होता है । सह–अस्तित्व दर्शन ज्ञान, सह–अस्तित्व में, से, के लिये ही होता है । इन दोनों विधाओं का दृष्टा जीवन ही होना पाया जाता है फलस्वरूप मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान विधि से **दृष्टा पद** की महिमा स्पष्ट है । इस विधि से जीवन ज्ञान अर्थात् देखने समझने वाला, दिखने वाला भी जीवन सहित होना स्पष्ट हुआ । देखने वाला जीवन, दिखने वाला सह–अस्तित्व यह अस्तित्व दर्शन के रूप में स्पष्ट हुआ। जीवन सह–अस्तित्व में अविभाज्य वर्तमान होने के आधार पर जीवन का अस्तित्व भी सहज होना पाया जाता है । **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 203–204)**
- जहाँ तक प्रत्यक्ष की बात है ज्ञानेन्द्रिय गोचर अथवा इन्द्रिय सन्निकर्ष के नाम से इंगित कराया गया है । आँखों से अधिक कल्पना में, कल्पना से अधिक समझ में और समझ से अधिक अनुभव में आता है । इन तथ्यों को पहले स्पष्ट कर चुके हैं । अतएव आँखों में सम्पूर्ण वस्तु का प्रतिबिम्ब नहीं आता है, समझ में आता है । इस विधि से प्रत्यक्ष कोई प्रमाण होता ही नहीं है। अनुमान पूर्णतया कल्पना क्षेत्र है । अनुमान में नहीं आया हो, भविष्य में आने वाला हो ऐसे घटना को आगम भी नाम दिया गया है । अनुमान ही जब कल्पना हो गई–आगम भी कल्पना ही होगा । काल्पनिक निर्णय, प्रवृत्तियाँ, प्रयास किसी गम्य स्थली को प्रमाणित नहीं करता । इस प्रकार प्रत्यक्ष अनुमान आगम का समीक्षा स्पष्ट हुई है । इसी के साथ आप्त वाक्य और शब्द प्रमाण का भी समीक्षा प्रस्तुत हो चुकी है । जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन, मानवीयता पूर्ण आचरण विधि से अनुभव, व्यवहार और प्रयोग ही प्रमाणों के रूप में होना देखा गया है । देखने का तात्पर्य समझने से है । ये तीनों हर मानव में घटित होने वाली घटनाएं है। मानवीयतापूर्ण विधि से मानव परंपरा अभिभूत होने की स्थिति में, (अभिभूत होने का तात्पर्य ओत–प्रोत होने से है) प्रत्येक मानव अपने में परीक्षण, निरीक्षण पूर्वक अनुभव को सत्यापित करना बनता है । मानवीयतापूर्ण व्यवहार, व्यवस्था में भागीदारी, आचरण का संयुक्त स्वरूप ही है । इसमें मानव का विचार शैली, अनुभव बल समाहित रहता ही है । प्रयोग कार्यों में जो कुछ भी किया जाता है विचार शैली और व्यवहार, प्रयोजन का सूत्र समाहित रहना पाया जाता है । इस सार्थक विधियों से मानवापेक्षा और जीवनापेक्षा में सार्थक होना पाया जाता है । अतएव यह स्पष्ट हो

गया है कि मानव परंपरा में प्रमाण और प्रमाणीकरण का मूल स्रोत अनुभव ही है । यही विचार शैली, व्यवहार कार्य और प्रयोग कार्यों में प्रमाणित होता है । इसलिये अनुभव प्रमाण ही परम प्रमाण है, यह स्पष्ट हो जाता है । इसीलिये मानव परंपरा अनुभवमूलक विधि से ही सार्थक होना स्पष्ट हो चुकी है । अनुभव सहज अभिव्यक्ति ही **दृष्टा पद** एवम् प्रमाण परंपरा का प्रमाण है । **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 205–207)**

- जागृत जीवन व जागृतिपूर्ण जीवन ही अपने कार्य व्यवहार, विचार और प्रयोगों को प्रमाणित करना ही जीवन **दृष्टा पद** प्रतिष्ठा मानव जागृति सहजता में होने का प्रमाण है । जीवन सहज अनुभव बल के आधार पर जीवन के सम्पूर्ण क्रियाएं अभिभूत होने के फलस्वरूप यथार्थता, वास्तविकता, सत्यता का स्वीकृति होना व उसकी अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन सहज होना पाया जाता है । सम्पूर्ण सत्य स्थिति सत्य, वस्तु स्थिति सत्य, वस्तुगत सत्य के रूप में ज्ञानगम्य विधि से दृश्यमान होना पाया गया है । क्रम से सह–अस्तित्व में ही दिशा, काल, देश, रूप, गुण, स्वभाव, धर्म सहज अध्ययन चेतना विकास मूल्य शिक्षा विधि से बोध अनुभव ही है । यह हर जागृत मानव के समझ में होता ही है । मानवीयता पूर्ण व्यवहार सहज विधि से अर्थात् मानवीयतापूर्ण आचरण सहित अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी करने से इसी स्थिति में, इसी गति में हर व्यक्ति **दृष्टापद** अनुभव समाधान का प्रमाण प्रस्तुत करना सुगम, सार्थक होना समीचीन रहता ही है । इन्हीं तथ्यों के आधार पर मानव दृष्टा होना सह–अस्तित्व में अनुभव है, प्रमाणित होता है । **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 207)**
- पूर्ववर्ती विचार में रहस्यमयी ईश्वर केन्द्रित विचार के अनुसार ईश्वर ही कर्ता–भोक्ता होना भाषा के रूप में बताते रहे। इसी के आधार पर ब्रह्म, आत्मा या ईश्वर सबका दृष्टा होना बताने भरपूर प्रयास किये । यह मुद्दा रहस्य होने के आधार पर अभी तक वाद–विवाद में उलझा ही हुआ है । जबकि सह–अस्तित्ववाद जीवन ही मानव परंपरा में **दृष्टा पद** प्रतिष्ठा सहित कर्ता व भोक्ता के रूप में सफल होना देखा गया है । जागृति का प्रमाण केवल मानव परंपरा में ही होता है । जितने भी विधा से सह–अस्तित्व, जीवन और मानवीयतापूर्ण आचरण संगत विधि से किया गया तर्क से, विश्लेषण से, किसी भी दो ध्रुवों के बीच त्व सहित व्यवस्था सहज कार्य प्रणाली से, जीवनापेक्षा अर्थात् जीवन मूल्य और मानवापेक्षा अर्थात् मानव सहज लक्ष्य के आधार पर और सार्वभौम व्यवस्था, अखण्ड समाज क्रम को जानने–मानने–पहचानने, निर्वाह करने के आशयों से अवधारणाएँ सहज रूप में ही जीवन में स्वीकार हो जाता है । इस क्रम में इस तथ्य का उद्घाटन चेतना विकास मूल्य शिक्षा–संस्कार विधि से होता है जीवन ही सार्थकता के लिये जागृत होता है । सार्थकता में जीना ही भोगना है । सार्थकता के लिये ही जागृतिपूर्ण विधि से सभी कार्य व्यवहार करता है । जागृति ही **दृष्टा पद** सहज प्रमाण है । करना ही कर्ता पद है और जीवनापेक्षा और मानवापेक्षा को भूरि–भूरि विधि से जीना ही भोक्ता पद है । शरीर केवल करने के क्रम में एक साधन के रूप में उपयोगी होना देखा गया है । अध्ययन क्रम में भी सार्थक माध्यम होना देखा गया । अध्ययन–अध्यापन करना भी कर्ता के संज्ञा में ही आता है । **दृष्टा पद** में पूर्णतया जीवन ही जागृति के स्वरूप में प्रमाणित होता है । यह प्रमाण जान लिया हूँ, मान लिया हूँ, प्रमाणित कर सकता हूँ के रूप में स्थिति के रूप में अध्ययन का प्रयोजन होता है । अर्थात् हर

व्यक्ति में जागृति स्थिति में होता है, भोगने का जहाँ तक मुद्दा है, मानवापेक्षा सहज समाधान समृद्धि को भोगते समय में सम्पूर्ण भौतिक–रासायनिक वस्तुओं का शरीर पोषण, संरक्षण, समाज गति के अर्थ में अर्पित, समर्पित कर समृद्धि को स्वीकार लेता है । जहाँ तक समाधान, अभय और सह–अस्तित्व में जीवन ही अनुभव करना देखा गया है । जीवनापेक्षा संबंधी सुख, शांति, संतोष आनन्द का भोक्ता केवल जीवन ही होना देखा गया है । **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 208–209)**

- सह–अस्तित्व ही अनुभव करने योग्य समग्र वस्तु है यह स्पष्ट हो चुकी है । अस्तित्व स्वयं सत्ता में संपृक्त प्रकृति के रूप में स्पष्ट है । अस्तित्व में अनुभूत होने की स्थिति में सत्तामयता ही व्यापक होने के कारण अनुभव की वस्तु बनी ही रहती है । इसी वस्तु में सम्पूर्ण इकाईयाँ दृश्यमान रहते ही हैं। परम सत्य सहजता सह–अस्तित्व ही होना, अस्तित्व में जब अनुभूत होना उसी समय से सत्तामयता में अभिभूत होना स्वाभाविक है । अभिभूत होने का तात्पर्य सत्ता पारगामी व्यापक पारदर्शी होना अनुभव में आता है । अनुभव करने वाला वस्तु जीवन ही होता है । इस विधि से सत्तामयता को ईश्वर ज्ञान परमात्मा के नाम से भी इंगित कराया है । यही सह–अस्तित्व में अनुभूत होने का तात्पर्य है अर्थात् सत्तामयता पारगामी होने का अनुभव ही प्रधान तथ्य है । अस्तित्व में अनुभव इस तथ्य का पुष्टि होना स्वाभाविक है । सत्ता में प्रकृति अविभाज्य है । सत्ता विहीन स्थली होता ही नहीं है । सत्ता में प्रकृति नित्य वर्तमान रहता ही है । इस विधि से सत्तामयता का पारगामीयता जड़–चैतन्य प्रकृति ऊर्जा सम्पन्न रहने के आधार पर प्रमाणित हो जाता है । इस विधि से सत्तामयता में ही अविभाज्य रूप डूबे, घिरे हुए व्यवस्था में दिखाई पड़ते हैं । यही परमाणु, अणु, अणु रचित पिण्ड अनेक ग्रह–गोलों के रूप में देखने को मिलता है । यही परमाणु, अणु, अणु रचित रचनायें प्राणावस्था का संसार, जीवावस्था और ज्ञानावस्था का शरीर ही दृष्टव्य है । इन सबका दृष्टा जीवन ही है । सत्ता में अनुभव के उपरान्त ही **दृष्टा पद** प्रतिष्ठा निरन्तर होना देखा गया है । इसी अनुभव के अनन्तर सह–अस्तित्व सम्पूर्ण दृश्य, जीवन प्रकाश में समझ में आता है। जीवन प्रकाश का प्रयोग अर्थात् परावर्तन अनुभवमूलक विधि से प्रामाणिकता के रूप में बोध, संकल्प क्रिया सहित मानव परंपरा में परावर्तित होता है । अतएव जागृतिपूर्ण जीवन क्रियाकलाप अनुभवमूलक ज्ञान को सदा–सदा के लिये व्यवहार और प्रयोगों में प्रमाणित कर देता है । यही मानव परंपरा सहज आवश्यकता है । **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 210–211)**
- कार्य, कारण, कर्ता : सहज मुद्दे पर भी मानव में चर्चा का विषय रहा है । ऊपर वर्णित दृष्टा, कर्ता, भोक्ता क्रम में कार्य, कारण, कर्ता का स्पष्ट कार्य प्रणाली समझ में आता है । यह मुद्दा रहस्यमय ईश्वर केन्द्रित विचार और अनिश्चियता मूलक वस्तु केन्द्रित विचार के अनुसार सदा–सदा प्रश्न चिन्ह के चंगुल में ही रहते आये । इसका भी कोई समाधान अध्ययनगम्य नहीं हो पाया था । अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित विचारधारा के अनुसार कार्य कारण का दृष्टा जीवन ही है । सत्ता में संपृक्त प्रकृति रूपी सह–अस्तित्व ही कार्य, कारण के रूप में नित्य वर्तमान है । सह–अस्तित्व ही कार्य का कारण रूप है । सह–अस्तित्व ही कार्य रूप है । क्योंकि सह–अस्तित्व में ही सम्पूर्ण नियति सहज क्रियाकलाप दृष्टव्य होना वर्तमान है । अस्तित्व नित्य वर्तमान है ही । अस्तित्व ही नित्य स्थिति रूप

में सह–अस्तित्व में ही नित्य गति रूप में जड़–चैतन्य प्रकृति होना स्पष्ट है । सह–अस्तित्व ही अस्तित्व सहज सम्पूर्ण क्रियाकलाप का कारण है और सह–अस्तित्व ही क्रियाकलाप है । अस्तित्व में केवल दृष्टा ही कर्ता पद में होना स्पष्ट है और अन्य सभी पद कार्य पद में ही प्रतिष्ठित है । कार्य–कारण–कर्ता में सामरस्यता ही **दृष्टा पद** प्रतिष्ठा का सूत्र बनता है । ऐसी प्रतिष्ठा में ही जीवन जागृति का प्रमाण अनुभवमूलक विधि से व्यवहार में ज्ञान प्रमाणित होना पाया जाता है । अतएव मानव ही कर्ता पद में है और सम्पूर्ण अस्तित्व ही कार्य–कारण पद में है। कार्य–कारण विधि से ही कर्ता पद प्रतिष्ठा ज्ञानावस्था में देखा गया है । **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 212–213)**

- जीवन ही दृष्टा, सह–अस्तित्व ही दृश्य, न्याय, धर्म, सत्यपूर्ण दृष्टियों का क्रियाशीलता ही दृष्टि का स्वरूप है । इसका साक्ष्य है न्याय सुलभता (परस्पर मानव और नैसर्गिकता में) धर्म सुलभता (सर्वतोमुखी समाधान सुलभता) और जागृति सुलभता (प्रामाणिकता और प्रमाण सुलभता) यह सब जागृति केन्द्रित विधि से सह–अस्तित्व रूपी परम सत्य व्यवहार– कार्य रूप में सम्पन्न होना देखा गया है । जागृति हर व्यक्ति का आकांक्षा है ही । इसलिये परंपरा में निर्दिष्ट रूप में शिक्षा–संस्कार परंपरा में इनका सहज अध्ययन–मूल्यांकन पद्धति, प्रणाली, नीतियों को अपनाना ही परंपरा में वांछित परिवर्तन का स्वरूप है । **दृष्टा पद** रूपी जीवन अथवा **दृष्टा पद** प्रतिष्ठा में वैभवशील जीवन परंपरा में न्याय, धर्म, सत्य को अभिव्यक्त, संप्रेषित, प्रकाशित करने में मानव ही समर्थ है । इस तथ्य को परीक्षण, निरीक्षण पूर्वक देखने के उपरान्त ही उद्घाटित किया है । इसलिये कि मानवाकांक्षा, जीवनाकांक्षा ही सर्वशुभ के रूप में है । यह सर्वदा मानव परंपरा में सफल होते ही रहेगी । जागृत परंपरा में ही हर मानव और परिवार सर्वाधिक उपयोगी, सदुपयोगी, प्रयोजनशील होते हुए उपकारी होना देखा गया है । उपकारिता का तात्पर्य मानव को, मानव जागृति मार्ग को प्रशस्त कराते हुए देखने को मिला है । यह क्रिया वश जो मानव कर पाता है वह उपकारी होता है वह जागृति सहज प्रमाणों को प्रस्तुत करता ही है, वर्तमान में समीचीन मानव जो जागृत नहीं हुए हैं उन्हें जागृत होने के लिये योग्य प्रस्तुति के रूप में हो जाता है। यह सह–अस्तित्व में अनुभव सहज प्रामाणिकता सहित सर्वतोमुखी समाधान, समृद्धि सम्पन्न स्थिति और गति के रूप में होना देखा गया है; क्योंकि जागृतिगामी अध्ययन प्रणाली से हर व्यक्ति स्वायत्त होता है । स्वायत्तता का स्वरूप स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता का सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय (उत्पादन) में स्वावलंबी होना देखा गया है । ऐसे स्वायत्त मानव ही परिवार मानव के रूप में जीने देकर जीने में समर्थ होता है । यही अद्भूत सामथ्र्यवश सर्वतोमुखी समाधान और समृद्धि वैभवित होता है । यही हर स्वायत्त परिवार मानव सफलता का प्रमाण है और सर्वशुभ का भी प्रमाण है । अस्तु, मानव सत्य दृष्टि पूर्वक, धर्म दृष्टि पूर्वक, न्याय दृष्टि सहज स्वायत्त होता है और स्वायत्तता का मूल्यांकन कर पाता है । इसीलिये परिवार मानव का सार्वभौमता (परिवार मानवता में, से, के लिये सर्वमानव में स्वीकृति) प्रवाहित होना सहज है । **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 231–232)**

- सम्पूर्ण परिवर्तन मानव में जो कुछ भी देखने को मिलती है, देखने का नजरिया करने के लिये वैचारिक तैयारी और शरीर के द्वारा सम्पन्न किये जाने वाली क्रिया व्यवहार ही है। इन्हीं के फलन में प्राप्तियाँ होना देखा गया है । इस प्रकार कर्ता, भोक्ता के मूल में **दृष्टा पद** ही प्रधान वस्तु होना स्पष्ट हो चुकी है । इसी आधार पर कर्ता, कार्य, कारण अपने आप में स्पष्ट होना स्वाभाविक है । कारण मूलत: मानव में पाये जाने वाली दृष्टि ही है । दृष्टि के कारण ही कार्य, कार्य के कारण से भोग, भोग के कारण से पुनर्दृष्टि, विचार होना हर मानव में दृष्टव्य है । **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 233-234)**
- (भोक्ता, भोग्य, भोग) अस्तित्व में जीवन जागृति पूर्वक मानव परंपरा में **दृष्टा-पद**-प्रतिष्ठा को प्रमाणित करना ही जीवन सहज तृप्ति और अस्तित्व सहज व्यवस्था है । व्यवस्था में ही हर मानव वर्तमान में विश्वास करना और होना पाया जाता है । और किसी उपाय से अभी तक प्रमाणित नहीं हुआ कि मानव को वर्तमान में विश्वास हो सके, कर सके । जीवन तृप्ति सहित मानव परंपरा तृप्ति, मानव परंपरा में, से, के लिये मूल उद्देश्य है । इसी सार्वभौम आशय को सार्थक बनाने के क्रम में हर व्यक्ति में स्वायत्तता, हर परिवार में समाधान, समृद्धि और सम्पूर्ण मानव में समाधान, समृद्धि, अभय, सह- अस्तित्व यही अपेक्षित भोग है। भोग के मूल में सुखापेक्षा का होना सर्वमानव में दृष्टव्य है । यह भी देखा गया है कि समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व में जीवनापेक्षा सहज सुख, शांति, संतोष, आनंद वर्तमानित रहता है । मूल मुद्दा यही है कि सुविधाएँ और संग्रह इन्द्रिय सन्निकर्षात्मक भोग, अतिभोग, बहुभोग इसे वर्तमान तक अर्थात् बीसवीं शताब्दी के दसवें दशक तक अभिप्राय माना गया । इनके निष्कर्ष को इस प्रकार देखा गया कि संग्रह-सुविधा-भोग-अतिभोग के क्रम में सुख भासते हुए उसकी निरंतरता नहीं होती - यह सर्व विदित है ही । जबकि हम मानव सदा-सदा से सुखापेक्षा से ही परम्परा क्रम में व्यक्त होते आ रहे हैं । यह घटना अर्थात् संग्रह-सुविधामूलक सुखापेक्षाएँ सदा-सदा ही हर व्यक्ति में क्षणिकता में भंगुरता को सत्यापित कराते ही आया है । ऐसी क्षणिकता (सुख भासने वाली क्षणिकता) को पाने के लिये दिवा रात्रि संग्रह-सुविधा का परिकल्पना-सम्पादन कार्यों में लगा रहता हुआ अथवा लगे रहने के लिये इच्छा करने वाले स्थितियों में अधिकांश लोगों को देखा गया । अंतिम बात क्षणिकता के सत्यापन में ही हर पीढ़ी का उद्गार संप्रेषित होते ही आया । इस मुद्दे का संप्रेषणा इसलिये यहाँ स्मरण में लाया कि मानव परंपरा सुखापेक्षा से ही भय, प्रलोभन, आस्था, संघर्ष झेलता हुआ इतिहास रेखा बनाया है । यह रेखा मानव अपने भोग विधि और प्रवृत्ति विधि का संयोजन में स्पष्ट कर दिया है । प्रवृत्ति विधि कार्य और व्यवहारों में, प्रवृत्ति विधि के मूल में समझदारी का भी चिन्ह बना ही रहा । **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर:244-246)**
- मानवीयता पूर्ण आचरण, मूल्य, चरित्र और नैतिकता का अविभाज्य रूप होना देखा गया है जिसको पहले स्पष्ट किया जा चुका है । हर परिवार मानव में मानवीयतापूर्ण आचरण ही समाज रचना और निर्वाह का सूत्र है । समाज रचना क्रम में ही परिवार रचना न्यूनतम आकार है । परिवार रचना के साथ ही व्यवस्था की आवश्यकता उद्भूत होना देखा गया है । व्यवस्था में जीना सर्वाधिक मानव का स्वीकृति है । व्यवस्था अपने में सह-अस्तित्व सहज है,

इस तथ्य को भी स्पष्ट किया जा चुका है, यह जागृति का पहला प्रमाण है । परिवार व्यवस्था में जीना सहज होने के उपरान्त ही समग्र व्यवस्था में भागीदारी संभव हो जाता है, समीचीन हो जाता है । जागृतिपूर्णता का यही प्रमाण होना देखा गया है। समग्र व्यवस्था में भागीदारी का प्रमाण सहित अभिव्यक्ति, संप्रेषणा प्रकाशन ही कैवल्य होना देखा गया है । कैवल्य अवस्था में सर्वतोमुखी समाधान अनुभव प्रमाण के आधार पर नित्य प्रवाह के रूप में होना पाया जाता है । कैवल्य अवस्था का महिमा यही है । इसी स्थिति में मानवापेक्षा, जीवनापेक्षा पूर्णतया प्रमाणित संतुष्ट रहना देखा गया । यही भ्रम से मुक्त अवस्था है । बंधन मुक्ति का सकारात्मक स्वरूप जागृति पूर्णता ही है । भ्रमवश ही बन्धन का पीड़ा होना पाया जाता है । मानव परंपरा में पीढ़ी से पीढ़ी भ्रमित होने का कारण परंपरा ही भ्रमित रहना रहा है । मानव परंपरा पाँच आयाम में प्रमाणित रहना ही जागृति है । स्वभावतः मानव अनेक आयामों में व्यक्त व प्रमाणित होने योग्य इकाई है । उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजनशीलता को साक्षित होने, रहने, करने योग्य इकाई है । यह सब कैवल्य पद में सार्थक व चरितार्थ होता है । **दृष्टा पद** जागृति योगफल में ही कैवल्य है न कि मोक्ष में । **(अध्याय: 7, पृष्ठ नंबर: 253-254)**

- अस्तित्व सदा-सदा होने के वैभववश ही अस्तित्व नाम है, इसमें सह-अस्तित्व विधि से संतुलन, नियंत्रण, संरक्षण, परिणाम, विकास, जागृति जैसी अभिव्यक्तियाँ सदा-सदा रहता ही है । ऐसा कोई क्रियाकलाप को हम प्रस्तुत या कल्पना नहीं कर सकते हैं जो अस्तित्व में नहीं । अब रहा इस ग्रह गोल में हो, उस ग्रह गोल में न हो, यही स्थितियों के आधार पर किसी भाव की अपेक्षा में ही अभाव का कल्पना हो पाता है, हर अभाव देश काल ही है । इस आधार पर कोई नया-पुराने की बात नहीं हो पाती, नया-पुराना के स्थान पर नित्य वर्तमानता का भाव समीचीन रहता है । सम्पूर्ण भावों का स्वरूप ही अस्तित्व है । दूसरे विधि से ऐसे स्वरूप को अस्तित्व नाम दिया गया । मानव ही **दृष्टा पद** प्रतिष्ठा में होने के कारण अस्तित्व को देखने, समझने, समझाने योग्य है । अभी तक जो कुछ भी अध्ययन के नाम से की गई है अथवा अध्ययनपूर्वक हाथ लगा है, वह सब अस्तित्व सहज, सह-अस्तित्व में ही हुआ । हर अध्ययन का कसौटी यही है पूरकता, विकास, जागृति, उदात्तीकरण, प्रक्रिया-प्रणाली अनुरूप रहने से इसके विपरीत कुछ भी किया जाता है सर्वाधिक मानव ही परेशान होने से शुरुआत होता है । जैसा युद्ध, शोषण, द्रोह, विद्रोह क्रियाकलाप के लिये किया गया सभी प्रकार का प्रयास । इस क्रियाकलाप के लिए जितना भी सोचा गया है मानव दुखी पीड़ित होकर सोचा है । पीड़ाओं का उपचार उत्पीड़न विधि को अपनाने से युद्ध कर्म, युद्धाभ्यास, युद्धकौशल, युद्ध तकनीक की सामग्रीयाँ बनते आया । आज की स्थिति में युद्ध और शोषण के लिए सर्वाधिक जन-धन लगा हुआ है । इसके लिए द्रोह, विद्रोह, शोषण अति आवश्यक हुआ । इसीलिये धरती के श्रेष्ठतम प्रतिभाएँ इन्हीं कार्यों के लिए नियुक्त हुई है । **(अध्याय: 7, पृष्ठ नंबर: 264)**

संदर्भ: व्यवहारवादी समाजशास्त्र

(**संस्करण** : 2009)

- विश्वास का तात्पर्य वर्तमान में सर्वतोमुखी समाधान और उसकी निरंतरता से है, सर्वतोमुखी समाधान का तात्पर्य अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन (अस्तित्व में मानव स्वयं अपने अविभाज्यता को **दृष्टा पद** प्रतिष्ठा रूपी महिमा सहित वर्तमान में होने की स्वीकृति और उसमें दृढ़ता और अस्तित्व ही सह–अस्तित्व। सह–अस्तित्व में ही विकास क्रम विकास जागृति क्रम जागृति रासायनिक भौतिक रचना–विरचना सहज प्रमाणों की स्वीकृति सहित प्रमाणीकरण क्रिया सम्पन्नता) से है। समाज शब्द का अर्थ भी उक्त स्पष्ट परिभाषा और उसके आशयों को पुष्ट करता है यथा पूर्णता के अर्थ में किया गया यत्न सहित गति है। यत्न का तात्पर्य जिस रूप में समाधान और उसकी निरंतरता प्रमाणित होता है। व्यवहार में यत्न को प्रयत्न शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। प्रयत्न का तात्पर्य प्रज्ञा सहित यत्न से है। प्रज्ञा का तात्पर्य फल परिणामों को भले प्रकार से अथवा संपूर्ण प्रकार से जानते हुए, मानते हुए, पहचानते हुए निर्वाह करने की क्रियाकलापों से है। समाज की परिभाषा स्वयं जिन–जिन तथ्यों को परम्परा में प्रमाणित करने को इंगित करता है इसे सार्थक बनाने के कार्यक्रमों को सामाजिक कार्यक्रम कहेंगे, क्योंकि हर व्यक्ति समाज परिभाषा का प्रमाण होना एक सर्व स्वीकृति तथ्य है। यह भी इसमें मूल्यवान अथवा आवश्यकीय स्वीकृत है कि मानव ही अखण्ड समाज और सार्वभौम व्यवस्था का धारक–वाहक होने योग्य इकाई है, साथ ही इसकी अनिवार्यता भी स्वीकृत है। नैसर्गिक रूप में जागृति नित्य समीचीन है। जागृति वर्तमान में ही प्रमाणित होती है, प्रमाणित करने वाली इकाई केवल मानव है। शुद्धत: इसका मूल रूप मानव अपने स्वत्व रूपी मानवीयता अथवा मानवत्व में, से, के लिए जागृत होना ही है। मानवत्व मानव को स्वीकृत वस्तु है। (**अध्याय**:2, **पृष्ठ नंबर**: 26–27)
- जीवन विद्या भले प्रकार से बोधपूर्वक अनुभवगामी विधि से अध्ययन कराया जाना सहज है। क्योंकि हर मानव जीवन मूलक विधि से ही जी पाता है। मानव चेतना विधि (जीवन मूलक विधि)से जीने में विश्वास हो पाना ही स्वयं के प्रति विश्वास होने का तात्पर्य है। जीवन ज्ञान से अस्तित्व में मानव ही **दृष्टा पद** में होना समझ में आता है। इसी आधार पर मानव को ज्ञानावस्था की इकाई के रूप में पहचाना गया। ज्ञान का तात्पर्य सुस्पष्ट हो चुका है कि जीवनज्ञान व अस्तित्व दर्शनज्ञान है। इसमें जागृत होने के उपरान्त स्वयं स्फूर्त विधि से ही विवेकपूर्ण तर्क, विज्ञान सम्मत होना पाया गया है। जीवन ज्ञान, सह–अस्तित्व दर्शनज्ञान मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान से समृद्ध मानव ही, प्रामाणिकता, समाधान और न्यायपूर्ण विचार व्यवहार व कार्यप्रणालियों को प्रमाणित करता है। प्रत्येक मानव में, से, के लिये अनुभव व्यवहार और प्रयोग ही प्रमाण है। अनुभव मूलक विधि से किया गया व्यवहार व प्रयोग तर्क सम्मत होना व प्रयोजनकारी होना पाया जाता है। यही ज्ञानावस्था का वैभव है ऐसा वैभव ही स्वराज्य व स्वतंत्रता के रूप में प्रमाणित होता है। (**अध्याय**:3 , **पृष्ठ नंबर**:47–48)

- जीवन ही जीवन को, जीवन से जानने–मानने की व्यवस्था बनी हुई है। प्रत्येक मानव स्वयं का अध्ययन कर सकता है। क्योंकि प्रत्येक मानव में चयन–आस्वादन, विश्लेषण–तुलन, चित्रण–चिन्तन, संकल्प–बोध, प्रामाणिकता और अनुभव, सम्पन्न होता हुआ देखा जा सकता है। प्रत्येक मानव में यह सभी क्रियायें पूर्णतया क्रियाशील होना, इसके **दृष्टापद** में होना, यह सब सत्यापित प्रमाणित होना ही मानव में जागृत परंपरा का स्वरूप है। उल्लेखनीय तथ्य यही है कि प्रत्येक मानव जागृत होना चाहता है। जागृति और अजागृति के बीच कौन सी ऐसी वस्तु है, कारण है, इसे परिष्कृत रूप में समझना ही एक मात्र उपाय है। हम इसे स्पष्टतया देखे हैं और सभी देख सकते हैं कि शरीर को जीवन समझना ही मूल मुद्दा है भ्रम का। इसके साथ जुड़ा हुआ दूसरा मुद्दा शरीर के बिना मानव परंपरा नहीं है। इन्हीं के अनुपम संयोग से ही अनेक समस्या और समाधानकारी गति और प्रवाह है। प्रत्येक मानव किसी न किसी अंश में आशा, विचार, इच्छा के रूप में प्रभाव है क्योंकि यह दूर–दूर तक प्रभावित करते आया। इसीलिये इसे प्रवाह के रूप में देखना सबके लिये सुलभ है। मानव में व्यक्त होने वाली संपूर्ण गतियाँ, प्रवाहित होने वाले आशा, विचार, इच्छा, सहित किये जाने वाले कायिक, वाचिक, मानसिक, कृत, कारित, अनुमोदित क्रियाकलाप ही हैं। क्योंकि गति और प्रवाह अलग–अलग होते नहीं। इसे दूसरे विधि से प्रवाह और दबाव कहा जा सकता है। तीसरे विधि से प्रवाह और प्रभाव क्षेत्र कहा जा सकता है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 60–61)**
- विकल्पों का प्रधान बिन्दुओं को,

  1. चेतना विकास मूल्य शिक्षा–संस्कार तकनीकी शिक्षण कार्य में विकल्प,
  2. ज्ञान, दर्शन, विवेक, विज्ञान विधि विचारों में विकल्प,
  3. न्याय सुरक्षा विधान में विकल्प,
  4. स्वास्थ्य संयम कार्य में विकल्प,
  5. विचार व आचरण विधि में विकल्प,
  6. व्यवहार कार्य विधि में विकल्प,
  7. उत्पादन विधि में विकल्प,
  8. विनिमय विधि में विकल्प,
  9. उपयोग विधि में विकल्प।

इन विकल्पों को हम भले प्रकार से पहचान चुके हैं। इस विश्वास से कि हम जिन विकल्पों को अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था के सूत्र के रूप में समझ चुके हैं वह सर्वमानव में स्वीकृत है ही। जैसे प्रसंग के रूप में –

1. उत्पादन कार्य में स्वायत्त होने के उद्देश्य सहित प्रत्येक परिवार उत्पादन कार्य में भागीदारी का निर्वाह करना। समझदारी से समाधान, श्रम से समृद्धि।

2. उत्पादन कार्य में नियोजित होने वाले श्रम मूल्य का पहचान उसका मूल्यांकनपूर्वक श्रम विनिमय प्रणाली को अपनाना। यह लाभ हानि मुक्त होना स्वीकार्य है।

3. आवश्यकता से अधिक उत्पादन, उत्पादन से उपयोग, उपयोग से सदुपयोग, सदुपयोग से प्रयोजनशील विधियों को स्वीकारा गया है। उपयोग विधि से परिवार न्याय और व्यवस्था, सदुपयोग विधि से समाज न्याय और व्यवस्था, प्रयोजनीयता विधि से प्रामाणिकता और जागृति मानव कुल में लोकव्यापीकारण होने का सहज सुलभता को देखा गया।

4. व्यवहार विधि में मूल्य मूलक मानसिकता कार्य–व्यवहारों को स्वीकारा गया है। यह कम से कम विश्वास के रूप में पहचाना गया है। विश्वास को वर्तमान में ही पहचानना, मूल्यांकन करना सहज है। वर्तमान में विश्वास अनिवार्यता के रूप में पहचाना गया है।

5. विचार विधि में विकल्प सह–अस्तित्ववादी विचार को स्वीकारा गया है। यह अस्तित्व सहज विधि से सम्पूर्ण विधाओं में सह–अस्तित्व प्रभावशाली होने, सर्वमानव जीवन सहज रूप में ही साथ–साथ जीने के अरमानों के रूप में पहचानी गई है। इसे हम भली प्रकार से स्वीकार कर चुके है। इसे सर्वमानव तक पहुँचाने के लिए 'समाधानात्मक भौतिकवाद', 'व्यवहारात्मक जनवाद' और 'अनुभवात्मक अध्यात्मवाद' को प्रस्तुत किया जा चुका है। इसमें सम्पूर्ण इकाई अपने स्वभावगति में समाधान उसकी निरंतरता है। व्यवहारपूर्वक ही सर्वमानव आश्वस्त विश्वस्त होने की व्यवस्था है और चाहता है। इसे भले प्रकार से देखा गया। यही सर्वमानव में समाधान है। अस्तित्व में अनुभव होता है इसे प्रमाणित कर भी देखा है। हर मानव अनुभव (तृप्ति) मूलक विधि से जीना चाहता है। यही विचार में विकल्प है।

6. ज्ञान दर्शन विज्ञान में विकल्प क्यों, कैसा, क्या प्रयोजन को इस प्रकार समझा गया है। जीवन ज्ञान अध्ययनगम्य है इसीलिये यह सबको सुलभ हो सकता है। दूसरा सम्पूर्ण अस्तित्व ही मानव को देखने में आता है। अर्थात् समझने में आता है। इसलिये अस्तित्व दर्शन हमें समझ में आया है और सर्वमानव समझने योग्य है और चाहता है। विकास विधि सह–अस्तित्ववादी सूत्रों के आधार पर सम्पूर्ण विज्ञान विश्लेषित होना सहज है। इसीलिये सर्वमानव–मानस इसे समझने का माद्दा रखता है। इतना ही नहीं, इसे सर्वमानव चाहता है।

7. न्याय विधि मानव सहज आचरण रूप में हम पहचान चुके हैं। सर्वमानव जीवन सहज रूप में न्याय की अपेक्षा करता ही है।

8. स्वास्थ्य संयम – यह मानव कुल में बारम्बार विचार प्रयोग होते ही आया है। यह जीवन जागृति को व्यक्त करने योग्य रूप में कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय सम्पन्न मानव शरीर तैयार रहने से ही है। पुनश्च, जीवन सहज जागृति को मानव परंपरा में प्रमाणित करना ही स्वस्थ शरीर का मूल्यांकन है। तीसरे प्रकार से, जीवन जागृति स्वस्थ शरीर द्वारा प्रमाणित होता है। जीवन जागृति का साक्ष्य जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान पूर्वक परिवार सभा से विश्व परिवार सभाओं में भागीदारी को निर्वाह करना, सुख; शांति; संतोष; आनन्द का अनुभव करना, समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व को प्रमाणित करना। इसे हम भली प्रकार से स्वीकार कर चुके हैं।

9. शिक्षा–संस्कार में मानवीकृत शिक्षा को हम भले प्रकार से पहचानें है इसमें मानव का सम्पूर्ण आयाम, दिशा, परिप्रेक्ष्य और कोणों का अध्ययन है। देश और काल, क्रिया, फल, परिणाम सहज समाधानपूर्ण विधि को समझा गया है। यह सर्वमानव में जीवन सहज रूप में स्वीकृत है।

ऊपर कहे अनुसार संपूर्ण मानव में सुखी होने का अपेक्षाएं समान रूप से देखने को मिलता है। उसका भाषा केवल सर्व–शुभ ही है और उसका स्वरूप समाधान, समृद्धि, अभय और सह–अस्तित्व है। ऐसा सर्वशुभ स्वरूप ही मानव मात्र की अपेक्षा होना, उसका स्वरूप सह–अस्तित्व विधि से अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था के रूप में परिलक्षित प्रमाणित होना पाया जाता है। परिलक्षित होने का तात्पर्य परिपूर्णतया लक्ष्य सम्पन्न होने से है अथवा परिपूर्णतया लक्ष्य को जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने से है। दूसरे क्रम में परिपूर्णतया परीक्षणपूर्वक स्वीकार किये गये लक्ष्य अथवा सार्वभौम लक्ष्य है। सार्वभौमता का मतलब सम्पूर्ण मानव से आवश्यकीय, वांछित, अनिवार्यत: एवं प्रमाण सहज लक्ष्य है। मानव परंपरा में ऊपर कहे नौ विधाओं से सार्वभौम शुभ लक्ष्य के रूप में स्वीकृत होना सहज है। इसके साथ यह भी सम्भावना समीचीन रूप में देखने को मिला है कि ऊपर कहे नौ बिन्दुओं में स्पष्ट किया गया कि अवधारणाओं का धारक–वाहक केवल मानव ही है। ऐसा मानव सहज धारक वाहकता सर्वशुभ के अर्थ में सम्पूर्ण ताना–बाना का आधार प्रत्येक मानव ही जीवन सहज रूप में दृष्टा होना देखा गया है। **दृष्टा पद** का वैभव को जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने के रूप में देखा गया है। यह केवल मानव में ही प्रमाणित होता है। जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शनज्ञान के अनन्तर प्रत्येक मानव में जीवन दृष्टा होने का सत्यापन सहित, स्वीकृति सहित जीवन तृप्ति अर्थात् जीवन जागृति पूर्णता उसी के प्रकाश में अर्थात् जीवन जागृति के प्रकाश में दूसरे विधि से जीवन तृप्ति के प्रकाश में सम्पूर्ण कार्य–व्यवहारों को निश्चित करने, निर्वाह करने, आचरण करने का स्वरूप अपने आप समझ में आता है। यह सब आवश्यकता के रूप में स्वीकृत होता है। फलस्वरूप प्रमाणित होना सहज हो जाता है। इस विधि से ही जीवन तृप्ति और सर्वशुभ कार्यक्रम और इनमें सहज संगीत होना

देखा गया है। जीवन तृप्ति का मूलरूप परम जागृति ही है। जागृति का प्रमाण अस्तित्व दर्शन ज्ञान जीवन ज्ञान मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान में पारंगत और प्रमाणित होना ही, इन प्रमाण विधि में विचार सहित कार्यक्रम प्रसवित होना देखा गया है। यही मानव को निश्चित दिशा संकेत करने, लक्ष्य सहज विधियों को निश्चित करने का विचार एवं कार्यकलाप है। ऐसे कार्यकलाप ही अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी सहित, सर्वतोमुखी समाधान, समृद्धि, अभय अर्थात् वर्तमान में विश्वास और सह–अस्तित्व को अनुभव करने और प्रमाणित करने का नित्य जागृत कार्य है। यह सर्वमानव स्वीकृत है, अपेक्षा है ही। (**अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर: 70–75**)

- मूल्य, चरित्र, नैतिकताएं अविभाज्य रूप में स्वायत्त मानव में प्रमाणित होने का क्रम ही आचरण है। मानव अपने स्वायत्त आचरण सहित ही कायिक, वाचिक, मानसिक, कृत, कारित, अनुमोदित रूप में सामाजिक होना प्रमाणित करता है। संबंधों के आधार पर जैसा मानव संबंधों को प्रयोजनों और व्यवस्था के सूत्रों के रूप में देखा गया है कि सम्मान संबंध जिसमें सम्मानित होने वाला और सम्मान करने वाले का परस्परता में होने वाले कार्यव्यवहार सम्मान संबंध का साक्ष्य है। सम्मान संबंध में स्पष्ट हो चुका है कि स्वयं से अधिक जागृत प्रमाणित व्यक्तियों के प्रति, स्वयं के प्रति विश्वास के आधार पर स्वयं स्फूर्त विधि से मुखरित और आचरित होने वाला क्रियाकलाप जिसका प्रयोजन सम्मानित होने वाले व्यक्ति में सम्मान किया या स्वीकृति होना आवश्यक है। सम्मान परस्परता में मूल्यांकन है। ऐसा सम्मान करने और सम्मानित होने का मूल्यांकन उभयतृप्ति का स्रोत होना पाया जाता है। सम्मान करने, सम्मान स्वीकृत करने का क्रियाकलाप ही जागृति सहज व्यवहार कहलाता है। संबंध स्वयं से, स्वयं के लिये, स्वयं में जाना, माना, पहचाना हुआ, निर्वाह करने के लिये आधार है। स्वयं में तृप्ति पाने का उद्धेश्य अथवा तृप्त होने का उद्धेश्य और तृप्त रहने का उद्धेश्य बना ही रहता है। संबंधों को पहचानने के उपरान्त उसका प्रयोजन केवल भय मुक्ति ही है। भय मूलतः भ्रम के रूप में होना विदित है। भ्रम; अधिक, कम, अथवा विपरीत पहचान और मान्यता है। यही भय प्रलोभन का कारण और स्वरूप है। इसी क्रियाकलाप को भ्रम नाम हैं। यहाँ यह भी स्मरणीय बिन्दु है कि अस्तित्व में केवल मानव ही अपने ही प्रयासों से भ्रमित होता है क्योंकि मानव में ही कर्म करने में स्वतंत्रता, फल भोगने में परतंत्रता दिखाई पड़ती है। कोई भी कार्य करने के मूल में विचारों का होना पाया जाता है। विचार पूर्वक ही ज्यादा, कम या विपरीत कार्यों में ग्रसित हो जाता है। भयपूर्वक मानव भ्रमित कार्यों को करता ही है, प्रलोभनपूर्वक भी करता है। भयपूर्वक सभी भ्रमित कार्य अस्वीकृतिपूर्वक होता है, प्रलोभन से संबंधित सभी कार्य स्वीकृतिपूर्वक होता है। इन दोनों विधा में भ्रम ही कारण है। आस्था विधा में स्वर्गवादी, जितने भी कल्पना–परिकल्पना मानव ने कर रखा है वह सब प्रलोभन का ही विस्तार रूप में होना पाया जाता है। नर्क में भी भय का ही विस्तार वर्णन होना पाया जाता है। इसके अतिरिक्त और कोई चीज आस्था विधा से खोजा जा रहा है वह प्रमाणित नहीं हो पाया अर्थात् समाज परंपरा में शिक्षा, संस्कार, व्यवस्था, संविधान के रूप में प्रमाणित नहीं हुआ है। इसका विकल्प में ही जीवन ज्ञान परम ज्ञान के रूप में जागृति और उसकी प्रमाण सहित परम्परा बनना संभव हो गई है। यह अध्ययनगम्य है। ऐसा जागृत मानव का आचरण ही मानव कुल का वैभव और संविधान होना

पाया जाता है। इसी के पुष्टि में सह–अस्तित्व दर्शन ज्ञान अध्ययनगम्य हुआ है। फलत: मानव में स्वायत्तता की सम्पूर्ण स्रोत नित्य समीचीन है। हर मानव जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में होने के आधार पर जीवन ही जागृति पूर्वक **दृष्टा पद** में अपने ऐश्वर्य को प्रमाणित करने की सार्वभौम व्यवस्था, अखण्ड समाज और उसके वैभव को जानने, मानने, पहचानने और निर्वाह करने की आवश्यकता, अवसर समीचीन है। इस प्रकार हर व्यक्ति जागृति पूर्वक ही स्वायत्तता का प्रमाण है। स्वायत्त मानव रूप प्रदान करने की शिक्षा–संस्कार ही मानव परंपरा सहज जागृति का प्रमाण है। **(अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर: 82–84)**

- परम सत्य के रूप में सह–अस्तित्व दर्शन सहज ही अध्ययनगम्य हुआ है। जीवन ज्ञान, **दृष्टा पद**–प्रतिष्ठा, और उसकी आपूर्ती और उसकी निरंतरता क्रम में अध्ययनगम्य हो चुका है।इसीलिए शिक्षा, शिक्षा पूर्वक व्यवहार और कर्माभ्यास सहित प्रमाणित होना पाया गया है। इस शास्त्र में पहले ही जीवन ज्ञान और अस्तित्व दर्शन संबंधी स्वरूप को सर्वविदित होने के अर्थ से प्रस्तुत किया है। यह भी विदित हुआ है कि जीवन ज्ञान ही परमज्ञान, अस्तित्व दर्शन ही परम दर्शन और मानवीयतापूर्ण आचरण ही परम आचरण है। **(अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर:99–100)**
- सर्वमानव सहज रूप में ही समान है। इसीलिये मानव धर्म सर्वमानव में समान है। यह तथ्य समझ में आता है। सर्वतोमुखी समाधान का तात्पर्य ही है स्वयं व्यवस्था में और समग्र व्यवस्था में भागीदारी का निर्वाह करना। इसी विधि से मानव अपने में चिरआशित स्वराज्य को पाकर सुख, शांति, संतोष और आनन्द को पाकर; समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व को प्रमाणित करता है। यही मुख्य रूप में मानव का चाहत भी है। मूलत: धर्म एक शब्द है। हर शब्द किसी का नाम है। धर्म शब्द से इंगित वस्तु मानव जागृति और उसका प्रमाण रूपी प्रामाणिकता, सर्वतोमुखी समाधान ही है। इसका स्वीकृत स्वरूप ही सुख, शांति, संतोष, आनन्द है। इसका **दृष्टा पद** में भी सुख, शांति, संतोष आनन्द है। इसका दृश्य रूप ही व्यवस्था है। वह परिवार सभा से विश्व परिवार सभा तक गुँथे हुए स्वरूप में दिखाई पड़ती है। व्यवस्था सहज अभिव्यक्ति ही अथवा फलन ही समाधान, समृद्धि, अभय और सह–अस्तित्व है। इस प्रकार जीवन सहज लक्ष्य, मानव सहज अर्थात् अखण्ड समाज सहज लक्ष्य, संगीत, विन्यास है, यही समाधान के रूप में निरूपित होती है। सह–अस्तित्व और अनुभव में संगीत है। यही आनन्द के नाम से विख्यात होता है। न्याय, उत्पादन, विनिमय, स्वास्थ्य–संयम, शिक्षा–संस्कार में होने वाला अनुभव ही सर्वतोमुखी समाधान है। यह मानव सहज जागृति की अभिव्यक्ति और संप्रेषणा है। सम्पूर्ण मानव अपने परिवार सहज आवश्यकता से अधिक कार्य करता है इसके फलन में समृद्धि का अनुभव होता है। यह भी समाधान है। हर परिवार सभा से विश्व परिवार सभा तक सम्बन्धों का पहचान, मूल्यों का निर्वाह, मूल्यांकन और उभयतृप्ति पाने की विधि जागृतिपूर्वक सम्पन्न होता है। यह निरन्तर समाधान है। लाभ–हानि मुक्त विनिमय प्रणाली जागृति सहज मानव की अपेक्षा है। इस विधि से विनिमय कार्य का क्रियान्वयन स्वयं समाधान है। स्वास्थ्य संयम, स्वाभाविक रूप में जीवन जागृति को शरीर के द्वारा मानव परंपरा में प्रमाणित करने योग्य शरीर है। यही स्वास्थ्य का निश्चित

स्वरूप है। जागृतिपूर्ण परंपरा में सर्वमानव अपने स्वास्थ्य को स्वस्थ बनाये रखने का उपाय और स्रोत बना ही रहता है। यह स्वयं में समाधान है। प्रत्येक मानव मानवीय शिक्षा–संस्कार पूर्वक स्वायत्त मानव, परिवार मानव, विश्व परिवार मानव के रूप में प्रमाणित हो पाता है। यह सर्वतोमुखी समाधान है। **(अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर: 114–115)**

- प्रत्येक जीव शरीर, का संचालन एक जीवन ही करता है। जीवन का स्वत्व रूपी शरीर को बल और क्रूरतापूर्वक भक्षण कर लेने के क्रियाकलाप को मांसाहारी प्रणाली के रूप में देखा गया है। जीवन स्वत्व के रूप में मानव का शरीर भी है। सप्त धातुओं से रचित मेधस युक्त शरीर को जीवन संचालित करता ही है इसलिये जीवावस्था और ज्ञानावस्था प्रतिष्ठित है। ज्ञानावस्था के मानव शरीर रचना परंपरा में समृद्धिपूर्ण मेधस रचना प्रमाणित हो चुकी है। इसी कारणवश मानव अपने **दृष्टा पद** प्रतिष्ठा सहज रूप में ज्ञानावस्था, जीवावस्था, प्राणावस्था और पदार्थावस्था का अध्ययन करता है, किया है, इसी के प्रमाण में हिंसा और अहिंसा के विभाजन रेखा का दृष्टा भी मानव ही है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 161)**
- मांसाहारी प्रणाली–प्रकिया से इस धरती पर ज्ञानावस्था के मानव परंपरा में जितने भी संतान हैं और रहेंगे और रहे हैं इनमें से कोई ऐसा इकाई अर्थात् एक मानव ऐसा नहीं मिलेगा जो हिंसा – अहिंसा के रेखा का प्रमाण प्रस्तुत किया हो। यह मानव कुल का सौभाग्य है दूसरा भाषा में ज्ञानावस्था का सौभाग्य है कि जीवन ज्ञान से स्वयं ही **दृष्टा पद** में होने का सत्य स्वीकारता है, अस्तित्व दर्शन से सह–अस्तित्व को पूर्णतया स्वीकारता है। इस विधि से जीवन का भी दृष्टा–ज्ञाता मानव ही है और अस्तित्व में दृष्टा–ज्ञाता मानव ही है। यह प्रत्येक व्यक्ति में अध्ययन पूर्वक स्वीकृति अवधारणा और अनुभव होने की व्यवस्था है अनुभव मूलक विधि से प्रत्येक व्यक्ति के प्रमाणित होने की व्यवस्था है। यह भी आवर्तनशीलता है। इसी विधि से अनुभव गामी और अनुभव मूलक विधि से प्रत्येक आयाम, कोण, दिशा, परिप्रेक्ष्य में सर्वकाल एवं सर्वदेश में समाधान समीकृत होता ही रहता है। इसे भले प्रकार से देखा गया है। अतएव मानवीयतापूर्ण मानव, देवमानव व दिव्यमानव ही हिंसा–अहिंसा के विभाजन रेखा का दृष्टा होना स्वाभाविक है। मानवीयतापूर्ण मानव होने के सत्यापन सहित ही समाधान की ओर हर मानव का गति होना स्वाभाविक है। अतएव आहार, प्रणाली, पद्धति को अपनाने का आधार मानवीयतापूर्ण मानव परंपरा में से के लिए पशुमानव, राक्षस मानव का प्रवृत्ति आधार नहीं हो पाता है। केवल मानवीयतापूर्ण मानव ही स्पष्टतया आधार हो पाता है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 163–164)**
- जीवन ज्ञान, सह–अस्तित्व दर्शन ज्ञान और मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान केन्द्रित मानवीयतापूर्ण शिक्षा प्रणाली, पद्धति, नीतिपूर्वक किये गये अध्ययन–अध्यापन कार्य विधि से शिशुकालीन तीनों अपेक्षाओं का भरपाई होता है। जीवन ज्ञान सम्पन्नता से हर मानव में **दृष्टा पद** प्रतिष्ठा में, से, के लिये वर्तमान में विश्वास होता है। फलत: न्यायप्रदायी क्षमता प्रमाणित हो जाती है। अस्तित्व दर्शन की महिमावश सह–अस्तित्व, सह–अस्तित्व में

व्यवस्था, व्यवस्था में भागीदारी उसकी आवश्यकता और प्रयोजन बोध होता है जिससे सही कार्य–व्यवहार करने का अर्हता स्थापित होता है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 177)**

- हर अध्यापन कार्य सम्पन्न करने वाला गुरू अपने में पूर्णतया जागृत रहना, जागृत रहने के प्रमाणों को निरंतर व्यक्त करने योग्य रहना आवश्यक है। यही अध्यापन कार्य सम्पन्न करने योग्य व्यक्ति को पहचानने–मूल्यांकन करने का आधार है। अस्तित्व अपने में चारों अवस्थाओं में वैभवित रहना इसी पृथ्वी पर दृष्टव्य है। यह चारों अवस्था परस्परता में सह–अस्तित्व सूत्र में, से, के लिये सूत्रित है। इसी सूत्र सहज महिमा को परमाणु गठन से रासायनिक–भौतिक रचना और विरचनाओं को विश्लेषण करना ही काल–क्रिया–निर्णय और उसके प्रयोजनों का स्रोत है। यह काल–क्रिया–निर्णय सहित प्रयोजन संबद्ध होने की आवश्यकता ज्ञानावस्था कि इकाई रूपी मानव का ही प्यास है। यही जिज्ञासा का स्वरूप है। इसी विश्लेषण अवधि में या क्रम में परमाणु में विकास, जीवन, जीवनी क्रम जीवावस्था में, मानव परंपरा में जीवन जागृति क्रम, जागृति, जागृति पूर्णता उसकी निरंतरता की भी पूरकता एवं संक्रमण विधियों का विश्लेषण स्पष्ट हो जाता है। ऐसा जागृत जीवन ही **दृष्टा पद** प्रतिष्ठा में कर्ता–भोक्ता होना प्रमाणित हो जाता है। फलस्वरूप मानव में व्यवस्था सहज रूप में जीने, समग्र व्यवस्था में भागीदारी की आवश्यकता–अर्हता का संयोगपूर्वक उत्साहित होने का, प्रवृत्त होने का, प्रमाणित होने का कार्य सम्पादित होता है। यही जागृति घटना और उसकी निरंतरता ही विवेक और विज्ञान सम्मत प्रणाली, पद्धति, नीति का वैभव है। इसकी आवश्यकता सर्वमानव में है। इसकी आपूर्ति मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार विधि से ही सम्पन्न होता है। । **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 220–221)**
- तन, मन, धन हर मानव में प्रमाणित वैभव सहज तथ्य है। हर जागृत मानव, जागृत परिवार मानव सहज रूप में अर्थ का सदुपयोग और सुरक्षा करने में समर्थ रहता ही है यह समर्थता ही मौलिक अधिकार के रूप में ज्ञात होता है। संपूर्ण मौलिक अधिकार जागृति के सहित प्रमाण के रूप में देखने को मिलता है। ऐसी जागृति शिक्षा–संस्कार विधि से ही सम्पन्न होना स्पष्ट है। संपूर्ण प्रकार के अभ्यास भी प्रकारान्तर से समझने का अथवा समझदारी में परिपूर्णता संपन्न होने का क्रियाकलाप है। परिपूर्णता का परीक्षण मानव के हर कार्य–व्यवहार, विचारों में स्पष्टतया मूल्यांकित होता है। इसे प्रत्येक मानव अपने ही क्रियाकलापों–विचारों के निरीक्षण विधि से स्पष्ट करता है। यथा किया गया परिणाम, सोचा गया की दिशा स्वयं में ही स्पष्ट होना देखा गया है। यही विश्लेषण का तात्पर्य है। यह वैभव अथवा महिमा हर मानव में प्रचलित रूप में संपन्न होता हुआ प्रमाणित होता है। इसका मूल कारण जीवन ही **दृष्टा पद** प्रतिष्ठा संपन्न रहना है। प्रत्येक मानव जीवन सहित ही मानव संज्ञा में, से संबोधित है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 236)**

- **दृष्टा पद** का प्रमाण ही है जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना; यह हर मानव में स्वीकृत है, अपेक्षित है। यह जागृति पूर्वक सफल होता है। अतएव मानव **दृष्टा पद** जागृति प्रतिष्ठावश ही निरीक्षण, परीक्षण, सर्वेक्षण कार्य संपन्न करता है। फलस्वरूप मानवत्व सहित जीने का प्रमाण वर्तमानित होता है। इसी क्रम में तन, मन, धन का सदुपयोग–सुरक्षा स्वाभाविक कार्य होने के कारण सदुपयोग विधि से सुरक्षा प्रमाणित होता है; और सुरक्षा–विधि से सदुपयोग प्रमाणित होता है। यही न्याय–सुरक्षा का, संतुलन का तात्पर्य है। सदुपयोग और सुरक्षा करने की संपूर्ण संभावना, मानव परंपरा में प्राकृतिक ऐश्वर्य के रूप में देखने को मिलता है। प्राकृतिक ऐश्वर्य नैसर्गिकता के रूप में समीचीन है। मानव परंपरा संस्कृति, सभ्यता, विधि, व्यवस्था के रूप में समीचीन है। संस्कृति क्रम में शिक्षा–संस्कार ही प्रधान मुद्दा है और सभ्यता में इसी शिक्षा–संस्कार का प्रमाणपूर्वक पोषण विधि प्रमाणित होता है; यह आचरण का ही स्वरूप है। इसी के साथ नैसर्गिकता समीचीनता अपने–आप में ऋतु–संतुलन के रूप में वर्तमानित रहना ही उसकी सार्थकता है और मानव के लिये अपरिहार्यता है। इसे सुरक्षित रखना मानव का मौलिक अधिकार है। इस प्रकार मानवीयतापूर्ण पद्धति, सभ्यता रूपी मानवीय आचरण ही मौलिक अधिकारों के रूप में विभिन्न आयामों में विभिन्न सार्थक अर्थों में प्रायोजित होना पाया जाता है। इस प्रकार अर्थ का सदुपयोग ही सुरक्षा को प्रमाणित करता है। यही संतुलन का तात्पर्य है। ऐसी न्याय–सुरक्षा क्रम में उत्पादन–कार्य एक आयाम है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 237–238)**
- मानव ही **दृष्टापद** प्रतिष्ठा के प्रमाणों को प्रमाणित करने योग्य इकाई है। क्योंकि मानव में ही न्याय, धर्म, सत्य दृष्टि प्रमाणित होना पाया जाता है। दृष्टियाँ प्रिय, हित, लाभ रूप में भी भ्रान्तिपूर्वक कार्यशील होता है। भ्रमित होने का मूल कारण शरीर को जीवन समझना ही है। इसी भ्रमवश मानव को व्यक्ति और समुदाय के रूप में विचारों का फैलना देखा गया है। व्यक्तिवाद अहमता का द्योतक है। यही समुदाय विधा में युद्ध, द्रोह, विद्रोह, शोषण मानसिकता है। मानव संचेतनावादी मानसिकता में न्याय, धर्म, सत्य ही विचारों का आधार हो पाता है। इसीलिये समाधान, समृद्धि, वर्तमान में विश्वास (अभय) और सह–अस्तित्व में प्रामाणिकता के रूप में हर जागृत व्यक्ति स्वयं स्फूर्त विधि से संपन्न होता है। इससे पता लगता है हर मानव बहुआयामी होने के कारण जागृति पूर्वक ही सभी आयाम–कोणों में मानवत्व को प्रमाणित करना बना रहना यही समाज और समाजशास्त्र का प्रधान आशय है। **(अध्याय: 7, पृष्ठ नंबर: 255–256)**
- मध्यस्थ जीवन अस्तित्व में **दृष्टा पद** प्रतिष्ठा सहज विधि में अपने में विश्वास करना, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलंबन पूर्वक हर मानव में प्रमाणित करना समीचीन है। इसी आधार पर मानव अपने मौलिक अधिकार संवेदनशीलता और संज्ञानशीलता में संतुलन को पाकर नित्य समाधान सम्पन्न होने का अवसर नित्य समीचीन है। यही जागृत परंपरा है। फलस्वरूप मध्यस्थ जीवन प्रमाणित होता है। **(अध्याय: 9, पृष्ठ नंबर: 283–284)**

- दिन, समय, बेला, मुहूर्त के सम्बन्ध में भी मानव परंपरा में विचार विधि कल्पना में आना स्वाभाविक है। इस मुद्दे पर प्रधान रूप में जागृति के उपरान्त, जागृत परंपरा में मानवीयतापूर्ण संचेतना अर्थात् जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने सहज कार्य–व्यवहार, विचार सम्पन्न करने की शुभ व सुन्दर समाधानपूर्ण स्थिति–गति रहेगी। मानव ही **दृष्टा पद** प्रतिष्ठा में होने के कारण विवाह के लिये अनुकूल समय को ऋतु काल के अनुसार निर्णय लेना और ब्रह्माण्डीय किरण विधि से ग्रह–गोल–नक्षत्रों का स्थिति–गतियों को आवश्यकतानुसार पहचानना स्वाभाविक रहेगा। इसी के साथ दिन, वार, तिथियों को पहचानना रहेगा ही। ये सभी बिन्दुओं पर मानव सर्वतोमुखी प्रवृत्तियों का द्योतक है। इस क्रम में स्वाभाविक है बसन्त और शीत ऋतुओं में मानव को सभी देश–काल में विवाहोत्सव का अनुकूलता बना ही रहता है। मानवीयता पूर्ण परंपरा के साथ सभी ब्रह्माण्डीय किरण अनुकूल रहना स्वाभाविक रहता है। क्योंकि मानवीयतापूर्ण परंपरा का अवतरण में भी ब्रह्माण्डीय किरणों का सानुकूलता बना ही रहता है। इसी सत्यतावश ब्रह्माण्डीय किरणों का सानुकूलता में विश्वास होना स्वाभाविक है। इसके उपरान्त भी हर देश जो अक्षांश–देशान्तर रेखा विधि से धरती पर देश का चिन्हित होना उस देश पर ब्रह्माण्डीय किरणों के प्रभावों को पहचानना मानव जागृति सहज कृत्य और परीक्षण है। इस विधि से भी शुभ–बेला को पहचान सकते हैं। सर्वसुलभ बेला यही है कि ऋतु–काल, परिस्थितियाँ उभय परिवार के लिये अनुकूल होना ही सार्वभौम औचित्यता है। (अध्याय: 9, पृष्ठ नंबर: 290–291)

संदर्भ: आवर्तनशील अर्थशास्त्र

(संस्करण: 2009)

- मानव ही **दृष्टापद** में है एवं इसे वैभवित, प्रमाणित, व्यवहृत करने योग्य इकाई है। अस्तु मानव ही कर्ता–भोक्ता होना भी पाया जाता है। (**अध्याय: 2 , पृष्ठ नंबर: 28**)
- जागृति जीवन में ही घटित होना पाया जाता है और प्रमाण–प्रयोजन मानव परंपरा में होना पाया जाता है। जागृति का संपूर्ण स्वरूप जानना–मानना–पहचानना–निर्वाह करना, दूसरे प्रणाली से अनुभवमूलक विधि से अभिव्यक्ति, संप्रेषणा एवं प्रकाशन करना ही है। जानने–मानने की संपूर्ण वस्तु अस्तित्व, अस्तित्व ही सह–अस्तित्व, सह–अस्तित्व में परमाणु विकास, परमाणु विकास क्रम में गठनपूर्णता (चैतन्य पद) में संक्रमित होना और जीवनी क्रम, जीवन जागृति क्रम, जीवन जागृति (क्रियापूर्णता), जीवन जागृतिपूर्णता (आचरणपूर्णता) और उसकी निरंतरता, रासायनिक–भौतिक रचना विरचना आवर्तनशील और पूरक विधि से अध्ययन करना सहज है। जीवन ही दृष्टा, कर्ता, भोक्ता पद में होने के कारण अध्ययन करने में समर्थ है। मानव शरीर भी एक रासायनिक, भौतिक रचना है। अस्तित्व ही सह–अस्तित्व के रूप में नित्य प्रभावी होने के कारण जीवन और शरीर का सम्बन्ध और सह–अस्तित्व सहज रूप में देखने को मिलती है। इसी कारणवश शरीर को जीवन्त बनाए रखते हुए जीवन अपने निज ऐश्वर्य को, अर्थात् जागृतिपूर्ण ऐश्वर्य को मानव परंपरा में प्रमाणित करने के क्रम में जीवन क्रियाकलाप प्रमाणित होता है। अस्तु आशा, विचार, इच्छा, ऋतम्भरा, और अनुभव प्रमाण, जीवन के वैभव है ही, इनमें से आशा, विचार, इच्छाएं, अनुभवपूत होने पर्यन्त भ्रमित रहना देखा गया है। अनुभवपूत होने का तात्पर्य अनुभवमूलक विधि से आशा, विचार, इच्छाओं को शरीर के द्वारा मानव परंपरा में और नैसर्गिक परिवेश में व्यक्त और प्रयोग करने से है। भ्रम का तात्पर्य जो जैसा है उससे अधिक, कम या उस वस्तु से भिन्न वस्तु मान लेने से है। निर्भ्रमता का तात्पर्य भी सुस्पष्ट है कि जो जैसा है उसे वैसा ही जान लें, मान लें, पहचान लें और निर्वाह कर लें। जो जैसा है का तात्पर्य सह–अस्तित्व में चार अवस्था व चार पदों का होना इंगित करा चुके हैं। इस प्रकार जीवन ही **दृष्टा पद** में होना, जीवन और शरीर का संयुक्त रूप में मानव परंपरा का होना जिसका प्रयोजन सर्वशुभ होना, सर्वशुभ घटित होने के लिए मानव परंपरा ही जागृत होना एक अनिवार्य स्थिति है। (**अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर: 34–36**)
- जागृत मानव परंपरा में अनुभव का स्वरूप क्रिया उसका प्रमाण जीवन सहज वैभव के रूप में जानना–मानना–पहचानना–निर्वाह करने के क्रम में समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व रूपी सौभाग्य सम्पन्न होना पाया जाता है। अखंड समाज और सार्वभौम व्यवस्था का नित्य प्रसवन, वैभव, नित्य उत्सव के रूप में मानव परंपरा में, से, के लिए नित्य समीचीन है। इस प्रकार जीवन ही **दृष्टापद** प्रतिष्ठावश सह–अस्तित्व दर्शन क्रिया में सफल होता है। तभी जीवन ही जीवन को जानने–मानने–पहचानने–निर्वाह करने में समर्थ होता है और निष्णात हो जाता है। समर्थ का तात्पर्य अनुभवमूलक विधि से अभिव्यक्त, संप्रेषित होने में निरंतरता को बनाए रखने से है। निष्णातता

का तात्पर्य अनुभवगामी विधि से अध्ययन कराने से है। व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी निर्वाह कराने से है। पारंगत होना निष्णातता में गण्य होता है। ये सभी परिभाषा, ध्वनि जीवन ज्ञान, सह–अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान सहज बिन्दुओं को स्पष्ट रुप में प्रमाणित करने–कराने के अर्थ में प्रस्तुत किया गया है। **(अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर: 36)**

- अब जीवन स्वयं में गठनपूर्ण परमाणु चैतन्य इकाई के रूप में नित्य विद्यमान रहना स्पष्ट किया गया है। यह भी स्पष्ट हो चुका है अस्तित्व में घटने–बढ़ने का कोई लक्षण ही नहीं है। अस्तित्व ही सम्पूर्ण पदों में वैभवित है इसी आधार पर जीवन **दृष्टा पद** में होना ही अध्ययन का आधार है। जीवन का अध्ययन संपन्न करने क्रम में कल्पनाशीलता, कर्म–स्वतंत्रता प्रत्येक मानव में पहचाना और पहचान कराने की विधाओं में स्पष्ट किया जा चुका है। मानव कितनी भी कल्पना करें उनमें कल्पना धारायें निर्गमित होती ही है। इससे यह पता लगता है कि कल्पनाशीलता हर व्यक्ति में अक्षय रूप में है। **(अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर: 36–37)**
- सह–अस्तित्व का तात्पर्य ही सभी प्रकटन साथ–साथ होने से है। साथ–साथ होने का तात्पर्य चिन्हित रूप में अलग–अलग आचरण प्रभाव, अविभक्त–विभक्त मानव पहचानने योग्य होने और विकास क्रम में अथवा विकास के रूप में स्पष्ट रहने से है। इस विधि से सम्पूर्ण भौतिक–रासायनिक वैभव विकासक्रम में गण्य होता है। साथ ही इनके योग–संयोग–वियोग विधियों से श्रेष्ठता क्रम में स्पष्ट हो जाती है। विकासक्रम में स्थित सभी भौतिक पदार्थ और रसायन द्रव्य, उनसे घटित घटनाएँ उदात्तीकरण के साथ–साथ सह–अस्तित्व इन्हीं के आचरण में दृष्टव्य है। यथा परमाणु–अंश एक दूसरे के साथ निश्चित दूरी, निश्चित कार्य, निश्चित फलन के साथ–साथ परमाणु गठित होता है। इसके मूल में सह–अस्तित्व रूपी अस्तित्व में ऊर्जा–सम्पन्नता, बल–सम्पन्नता का स्वरूप स्पष्ट किया जा चुका है। इसी आधार पर परमाणु सहज क्रियाकलाप का मानव अपने भाषा में अपने ही **दृष्टापद** प्रतिष्ठा के अनुरूप व्यक्त करने पर जितने भी परमाणु अंश परमाणु में कार्यरत हैं, वे सब एक दूसरे को पहचानते हैं। प्रत्येक परमाणु गतिपथ और गति पथों सहित कार्यरत रहना, निर्वाह करने का द्योतक है। इस प्रकार प्रत्येक परमाणु अंश पहचानने और निर्वाह करने का प्रवर्तन सम्पन्न रहता है। इसका गवाही यही है, सभी परमाणु अंश किसी न किसी परमाणु गठन में ही कार्यरत रहते हैं। किसी परमाणु अंश गठन से बाहर यदि दिखते हैं अथवा मानव घटित करता है, पुनः वे सब मिलकर परमाणु के रूप में गठित होने के प्रयास में रहते हैं अथवा किसी परमाणु में समावेश होने के प्रयास में रहते हैं। परमाणु अंश से ही पहचानने, निर्वाह करने का क्रियाकलाप, तद्नुसार निरीक्षण–परीक्षण पूर्वक सर्वेक्षित होता है। **(अध्याय: 3, पृष्ठ नंबर: 77–78)**
- विकास जागृति सहज प्रेरणाओं का प्रमाण स्वयं में विकास जागृति ही है। विकास जागृति का ध्रुव बिन्दु अथवा विकास का प्रमाण बिन्दु मानव जीवन ही है। मानव अनुभवमूलक वैचारिक परिशीलन, विश्लेषणपूर्वक, प्रयोजन और प्रयोजित बिन्दुओं के रूप में जानने–मानने और पहचानने की अध्ययन प्रक्रिया–क्रिया है। विकास घटना के साथ–साथ विकास क्रम भी होना एक स्वाभाविक वैभव है। इस वैभव को हम मानव देख पाते हैं। मानव में देखने

की परिभाषा सुस्पष्ट है कि जानना–मानना–पहचानना–निर्वाह करना। इस विधि से समझने वाला मानव ही है। समझ में आने वाली वस्तु ही सह–अस्तित्व ही है, इसीलिए मानव ही दृष्टा, कर्ता, भोक्ता के रूप में सहज है। यही जागृति का प्रमाण है। विकास गठनपूर्णता के रूप में वैभव है। जागृति **दृष्टा पद** जागृति एवं प्रमाणों के रूप में दृष्टव्य है। इन प्रमाणों के आधार पर ही मानव अपने परंपरा सहज वैभव को प्रमाणित कर पाता है। **दृष्टा पद** सहज विधि से जड़–चैतन्य का दृष्टा है। इसी विधि से मानव का परमाणु को देख पाना संभव हुआ है। परमाणुओं का नाम, रचना की परिकल्पना मानव परंपरा में आ चुका है। इसका लोकव्यापीकरण भी हुआ है। नाम और रचना के परिकल्पनाओं को यथावत् मानते हुए, ऐसे परमाणुएं है क्यों ? और कितने हैं? वाला प्रश्न आना सहज रहा। इन्हीं प्रश्नों का सहज उत्तर रूप में अनेक प्रजातियों के परमाणु होना, उसमें से किसी संख्यात्मक परमाणु अंशों से गठित परमाणुओं में भूखापन और कुछ निश्चित संख्यात्मक परमाणु अंशों से गठित परमाणुएं अपने में अजीर्णता को प्रकाशित करते हैं। ऐसे भूखे और अजीर्ण परमाणु जितने भी हैं, वे सब विकास क्रम में हैं। ऐसे विभिन्न जाति के परमाणुएं अणु और अणु रचित रचनाओं में भागीदारी करता हुआ देखने को मिलता है।) इसमें जागृति क्रम ही एक नामकरण ही है। (जागृति क्रम – जागृति जितने भी जीवन मानव परंपरा में ही अध्ययन गम्य है विद्यमान हैं वे सभी इकाई के रूप में गण्य होते हैं और परमाणु व्यवस्था का आधार रूप में व्याख्यायित होते हैं। व्याख्यायित होने का तात्पर्य कार्यरत रहने से है। प्रत्येक निश्चित संख्यात्मक परमाणु अंश सम्पन्न परमाणुएं, अपने–अपने आचरणों को, सदा–सदा के लिए, एक ही प्रयोजन के रूप में अथवा एक–एक निश्चित प्रयोजन के रूप में बनाए रखते हैं। विकास क्रम में पाये जाने वाले सम्पूर्ण प्रकार के परमाणुएं अणुबन्धन एवं भार–बन्धनपूर्वक रचना–विरचना कार्यों को सम्पन्न करते हैं। ऐसी रचना और विरचनाएं भौतिक और रासायनिक प्रभेदों से होना पाया जाता है। भौतिक रचनाएं प्रधान रूप में मृत–पाषाण–मणि–धातुओं के रूप में; रासायनिक रचनाएं, अम्ल, क्षार, पानी; प्राणावस्था की संपूर्ण रचना और विरचना, जीवास्था की संपूर्ण शरीर रचना और विरचना तथा ज्ञानावस्था के संपूर्ण शरीर रचना और विरचना के रूप में दृष्टव्य है।) **(अध्याय: 3, पृष्ठ नंबर: 82–84)**

- तृप्ति का स्रोत संभावना और स्थिति को और प्रकार से देखा गया है कि प्रत्येक मानव में जीवन शक्तियाँ अक्षय है, क्योंकि आशा, विचार, इच्छा, ऋतम्भरा और प्रमाण को कितना भी परावर्तित करें और परावर्तन के लिए यथावत् शक्तियाँ उर्मित रहता हुआ देखने को मिलता है। उर्मित रहने का तात्पर्य उदयशील रहने से है। उदयशीलता का तात्पर्य निरंतर उदितोदित रहने से है। उदितोदित का तात्पर्य नित्य वर्तमानता से है। इस प्रकार प्रत्येक मानव में जीवनशक्तियाँ और बल नित्य वर्तमान होना स्वाभाविक है। शरीर यात्रा के पहले भी जीवन यथावत् रहता ही है। शरीर यात्रा के अनन्तर जीवन रहता ही है। जीवन सहज रचना कार्य के सम्बन्ध में अध्ययन सहज विधि से स्पष्ट की जा चुकी है। यह सूत्र अस्तित्व न तो घटती न तो बढ़ती– न ही पुरानी होती है। यह अस्तित्व सहज अनन्त वस्तुओं में व्यापकता, सहज सह–अस्तित्व के आधार पर स्पष्ट है। अस्तित्व में चारों अवस्थाएं नियति सहज अभिव्यक्ति है। नियति सहज कृति का तात्पर्य उपयोगिता एवं पूरकता और विकास जागृति सहज अभिव्यक्ति से है।

सह–अस्तित्व स्वयं क्रमबद्ध प्रणाली होने के कारण सम्पूर्ण घटना और प्रयोजन पूर्व घटना–प्रयोजन से जुड़ी हुई होते हैं। फलस्वरूप मूल रूप से गुंथी हुई, जुड़ी हुई, स्पष्ट हो जाते हैं। मूल रूप सह–अस्तित्व ही है। जो नित्य वर्तमान ही है। वर्तमान त्रिकालाबाध सत्य है। परम सत्य रूपी वर्तमान में प्रमाणित होना ही सत्य का तात्पर्य है। वर्तमान स्वयं सह–अस्तित्व और उसकी निरंतरता होना देखने को मिलता है। मानव भी अस्तित्व में अविभाज्य वस्तु होते हुए **दृष्टापद** प्रतिष्ठावश जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने की संपदा सम्पन्न है। इसलिए सत्य में राहत पाना मानव का अभीप्सा बनी हुई है। अभीप्सा का तात्पर्य अभ्युदय पूर्ण इच्छा से है। अभ्युदय का तात्पर्य सर्वतोमुखी समाधान व उसकी निरंतरता से है। सर्वतोमुखी समाधान सह–अस्तित्व सहज वर्तमान में मानव का दृष्टा, कर्ता व भोक्ता पद को प्रमाणित करने से हैं। इस प्रकार मानव अपने **दृष्टा पद** प्रतिष्ठा सहज रूप से ही मूल्यांकन कार्य को संपादित कर तृप्ति को पाता है। ऐसे मूल्यांकन के मूल में प्रत्येक उत्पादित वस्तु के उपयोगिता, सदुपयोगिता प्रयोजन का आधार और उसका मूल्यांकन संभव हो जाता है। इस प्रकार हम मानव परंपरा रूपी (गति–प्रयोजन विहिन) राष्ट्रीय कोष, अन्तर्राष्ट्रीय कोष, सुवर्ण द्रव्य मूलक मूल्यांकन से मुक्त होकर श्रम नियोजन, श्रम मूल्य और मूल्यांकन विनिमय प्रणाली पूर्णतया संभव है और समीचीन है। जागृतिपूर्वक उपयोगिता, सदुपयोगिता क्रम को मूल्यांकन के लिए पहचानना सहज है। इसी तारतम्य में तृप्ति और उसकी निरंतरता सर्वसुलभ होता है। **(अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर: 106–107)**

- जीवन सोता नहीं है, अपितु सतत कार्यरत रहता ही है। जीवन सहज अक्षय–कार्य में से आंशिक कार्य ही शरीर के द्वारा प्रमाणित हो पाता है। जीवन जागृत होने के उपरांत भी जागृत–स्वप्न–सुसुप्ति अवस्थाओं में शरीर को जीवंत बनाए रखते हुए शरीर के **दृष्टा पद** में कार्यरत रहता ही है। इसमें जागृति के अनंतर शरीर को जीवन समझने वाला भ्रम दूर होता है। शरीर व्यवहार और अस्तित्व में **दृष्टा पद** स्वयं अनुभव सहज वैभव है। **दृष्टापद** ही पूर्णता का द्योतक यही परंपरा से प्रमाण है। पूर्णता के अनंतर उसकी निरंतरता होना ही प्रमाण, महिमा है। इस विधि से मानव परंपरा जागृत होने के उपरांत ही मानव कुल में भाग लेने वाले हर जीवन का अपेक्षा जो शैशवकाल में ही सर्वेक्षित हो पाता है, उसका भरपाई नित्य वैभव के रूप में सम्पन्न होना पाया जाता है। इससे हम यह निष्कर्ष को पाते हैं कि शिशुकालीन अपेक्षाएँ, शोध–कार्य प्रवृत्ति कार्यप्रणाली के शोध के लिए प्रेरक होता है। (दूसरा, मानव कुल में व्याप्त कुण्ठा यथा द्रोह–विद्रोह–शोषण और युद्ध साथ ही द्वेष से ग्रसित परिवार, समुदाय अपने त्रासदी) जागृति महिमावश भ्रम मुक्ति और शोध प्रवृत्ति की आवश्यकता को इंगित करता है। तीसरा, यह धरती का शक्ल–सूरत ही बदल जाना, पर्यावरण में प्रदूषण अपने पराकाष्ठा तक पहुँचना पुनः प्रचलित सूझबूझ के स्थान पर (जिससे यह घटनाएँ हुईं) विकल्पात्मक सूझबूझ के शोध की आवश्यकता को स्पष्ट करता है। **(अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर: 125–126)**

- अस्तित्व में कहीं लाभ–हानि का स्थान है या नहीं, इस तथ्य का परिशीलन किया गया। इस परिशीलन से विदित है अस्तित्व में, सह–अस्तित्व में, विकास और संक्रमण में, जीवन और जीवन जागृति में, रासायनिक भौतिक रचना और विरचनाओं में लाभ–हानि का संकेत या प्रमाण न होकर अस्तित्व सहज रूप में ही सह–अस्तित्व, समृद्धि सुस्पष्ट रूप में दिखाई पड़ती है। क्योंकि परमाणु समृद्ध होकर ही गठनपूर्ण होता है और संक्रमित होता है। फलस्वरूप चैतन्य इकाई के रूप में जीवन अणुबंधन–भारबंधन से मुक्त होकर आशा–विचार–इच्छा, ऋतम्भरा और प्रामाणिकता को व्यक्त, अभिव्यक्त, सम्प्रेषित, प्रकाशित करने योग्य हो पाता है। यह भी जीवन समृद्धि का ही द्योतक है। अर्थात् जीवन जागृति, जीवन समृद्धि का ही द्योतक है। यह भी सह–अस्तित्व में ही सम्पन्न होना देखा जाता है। विकास क्रम में कार्यरत सभी रासायनिक, भौतिक वस्तु और द्रव्य सह–अस्तित्व में ही अणु समृद्धि फलत: रासायनिक उर्मि के रूप में उदात्तीकरण और रचना–विरचनाएँ सम्पन्न होता हुआ देखने को मिलती है। यह भी समृद्धि, पूरकता और सह–अस्तित्व के रूप में ही स्पष्ट है और अपने को व्याख्यायित करता है। इस प्रकार अस्तित्व सहज रूप में सह–अस्तित्व और समृद्धि स्थापित है ही। मानव ही एक इकाई ज्ञानावस्था में वैभवित है। यह सह–अस्तित्व सहज प्रतिष्ठा है। इस प्रतिष्ठा तक अस्तित्व में मानव के पुरुषार्थ–परमार्थ का, तकनीकी ज्ञान–विज्ञान के प्रयुक्ति के बिना ही यह प्रतिष्ठा स्थापित है ही। मानव का जो कुछ भी नियोजन–प्रयोजन, कार्य–व्यवहार है यह सब उक्त कहे पाँचों प्रकार से ही सम्पन्न होना देखा गया है। पुरुषार्थ का तात्पर्य उत्पादन–कार्य से है। परमार्थ का तात्पर्य जागृतिपूर्णता से है। तकनीकी का तात्पर्य मानव सहज सामान्य आकांक्षा, महत्वाकांक्षा संबंधी वस्तुओं को उत्पादन करने की विधि विहित चित्रण, विश्लेषण सहित मानसिकता से है। ज्ञान का तात्पर्य जानने–मानने–पहचानने–निर्वाह करने से है। विज्ञान का तात्पर्य तर्कसंगत विधि से ज्ञान को प्रवाहित करने का विचार है। तात्विक विधि से–कालवादी, क्रियावादी, निर्णयवादी (प्रमाणित और परिमाणित करने वाला) विचार विधि ही विज्ञान है। इससे सुस्पष्ट है मानव कृतियों का जो कुछ भी अक्षय बल है, शक्ति है वह जागृतिपूर्वक व्यक्त होने की स्थिति में इन्हीं पाँचों रूपों में कर्ता–भोक्ता के रूप में प्रमाणित हो पाता है। उक्त पाँचों प्रकारों से प्रमाणित होने वाली क्षमता ही स्वयं में **दृष्टा पद** का प्रमाण है। यह भी समृद्धि का ही द्योतक होना पाया जाता है और सह–अस्तित्व में ही जागृति सम्पन्न होता है। इस विधि से मानव ही जागृत होने के उपरांत जो स्वरूप स्पष्ट हो पाती है, उसमें भी कहीं लाभ का स्थान न होकर सह–अस्तित्व और समृद्धि ही दिखाई पड़ती है। **(अध्याय: 5, पृष्ठ नंबर: 161–163)**
- सत्तामयता में ही सम्पृक्त प्रकृति डूबा, भीगा और घिरा हुआ है। यह अविभाज्य रूप में नित्य वर्तमान है। यही परम सत्य सहज स्वरूप है। सत्तामयता व्यापक, पारगामी, पारदर्शी के रूप में नित्य विद्यमान है। यही ब्रह्म, ईश्वर, शून्य, असीम अवकाश, विस्तार आदि नामों से भी इंगित होता है। यह वस्तु सर्वत्र समान रूप में विद्यमान होना दिखाई पड़ती है। यह हर परस्परता में, एक–एक के परस्परता के मध्य में, और प्रत्येक एक के सभी ओर दिखाई पड़ती है। यह नित्य सत्ता सम्बन्धी रहस्य और भ्रम समाप्त होना पाया जाता है। अतएव अस्तित्व स्वयं में नित्य वर्तमान,

विद्यमान, विकास, जागृति, रचना, विरचना के रूपों में दृष्टव्य है। अस्तित्व में **दृष्टा पद** में जागृत जीवन ही है। सत्ता व्यापक पद में, प्रकृति चार पद में दृष्टव्य है। इन सबका दृष्टा जागृत जीवन पूर्वक जीने वाला मानव ही है। अस्तु हर मानव जागृत परंपरा में अर्पित होकर स्वयं जागृत होना स्वाभाविक है। परंपरा जब तक भ्रमित रहेगी तब तक परंपरा में अर्पित हर मानव संतान भ्रमित रहेगा ही। **(अध्याय: 5, पृष्ठ नंबर: 187)**

- मानवीय शिक्षा–संस्कार से स्वायत्त मानव, स्वायत्त मानवों से स्वायत्त परिवार, स्वायत्त परिवार व्यवस्था से स्वायत्त ग्राम परिवार व्यवस्था, ग्राम समूह परिवार व्यवस्था क्रम में विश्व परिवार व्यवस्था को पाना सहज है। मानवीयतापूर्ण शिक्षा की संपूर्णता अपने आप में जीवन ज्ञान, सह–अस्तित्व दर्शन ज्ञान और मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान ही है। अपने आप का तात्पर्य मानव अपना ही निरीक्षण–परीक्षणपूर्वक ज्ञान सम्पन्न, दर्शन सम्पन्न, आचरण सम्पन्न होने से है। दूसरी विधि से अस्तित्व सहज सह–अस्तित्व में परमाणु में विकास, गठनपूर्णता, जीवनी क्रम, जीवन का कार्यकलाप, जीवन जागृति क्रम, जीवन जागृति, क्रियापूर्णता उसकी निरंतरता और प्रामाणिकता (जागृति पूर्णता) उसकी निरंतरता **दृष्टापद** से है। इस प्रकार मानवीय शिक्षा का तथ्य अथ से इति तक समझ में आता है। इसी समझदारी के आधार पर हर मानव अपने में परीक्षण, निरीक्षण करने में समर्थ होता है। फलस्वरूप स्वायत्त परिवार व्यवस्था से विश्व परिवार व्यवस्था तक हम अच्छी तरह से सार्वभौमता, अक्षुण्णता को अनुभव कर सकते हैं। इस विधि से सेवा, व्यवस्था के अंगभूत कर्तव्य के रूप में, व्यवस्था दायित्व के रूप में, उत्पादन आवश्यकता, उपयोगिता, सदुपयोगिता के रूप में, परिवार व्यवहार सम्बन्ध, मूल्य, मूल्यांकन अर्पण, समर्पण और उभयतृप्ति के रूप में वर्तमान होना पाया जाता है। यह अधिकांश मानव में अपेक्षा भी है। इसी विधि से धरती की संपदा संतुलन विधि से सदुपयोग होना स्वाभाविक है, अर्थ का सदुपयोग होना ही आवर्तनशीलता है। **(अध्याय: 5, पृष्ठ नंबर: 190–191)**
- विनिमय कार्य विधि की यह सही बेला है। मानव ने पहले भी एक बार विनिमय का प्रयास किया। उस प्रयास में उत्पादन कार्य के मूल्यां ंकन का आधार श्रम मूल्य नहीं रहा। उसके विपरीत लाभ मानसिकता उस समय में भी व्यापारी में बना रहा। लाभ मानसिकताएँ शोषण मूलक होते ही हैं। इसमें संग्रह–सुविधा का पुट रहता ही है। यह आज भी स्पष्टतया दिखाई पड़ता है। इस आधार पर मानव अपने व्यवस्था का अंगभूत अथवा समग्र व्यवस्था के अंगभूत रूप में अर्थ और आर्थिक गति को पहचानने की स्थिति में यह पता लगता है कि अस्तित्व में सम्पूर्ण विकास सहज सीढ़ियाँ आवर्तनशीलता और पूरकता विधि सम्पन्न है। सह–अस्तित्व में निरंतर पूरकता और विकास ही समाधान के रूप में स्पष्ट है। इसी क्रम में मानव अपने **दृष्टा पद** प्रतिष्ठा को पहचानने के उपरांत ही स्वयं में व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी होने की आवश्यकता को अनुभव किया और जागृतिमूलक विधि से ही परिवार मूलक स्वराज्य मानव सहज पद होना मानव का अभिलाषित, आकांक्षित और आवश्यकता के रूप में पहचाना गया। सर्वशुभ सर्वसुलभ होने के लिए आवर्तनशील अर्थव्यवस्था की समग्र व्यवस्था के अंगभूत कार्यक्रम होना देखा गया है। इसी विधि से पहला आर्थिक असमानताएँ समाप्त होते हैं और समृद्धि के आधार पर हर

समझदार परिवार में प्रमाण सुलभ होना सहज है। दूसरा, प्रतीक मूल्य से छूटकर प्राप्त मूल्यों से तृप्त होने का सूत्र सहज रूप में रहा है उसमें जागृति प्रमाणित होती है। तीसरा, संग्रह का भूत संघर्ष के साथ शोषण के साथ जुड़ा ही रहता है, यह सर्वथा दूर होकर परिवार मानव के रूप में हर व्यक्ति अपने दायित्व, कर्तव्यों का निर्वाह करने का उत्सव सम्पन्न होने का अवसर सर्वदा समीचीन रहता ही है। चौथा, परिवार मानव विधि से ही स्वराज्य व्यवस्था उसके अंगभूत आवर्तनशील अर्थव्यवस्था गतिशील होने के क्रम में ही विश्व परिवार और व्यवस्था के साथ सूत्रित होने का कार्यक्रम मानव जागृति सहज वैभव के रूप में होना समझा गया। और यह इस तथ्य का द्योतक है समुदायों के सीमाओं में स्वीकृत प्रत्येक मानव दिशाविहीनता, लक्ष्यविहीनता फलतः सार्वभौम कर्तव्य विमूढ़ता से ग्रसित हो गया है। इस पीड़ा से छूटने का सर्वसुलभ कार्यक्रम और मार्ग प्रशस्त होना समीचीन है। **(अध्याय: 8, पृष्ठ नंबर: 250–251)**

संदर्भ: मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान

(संस्करण: 2008)

- इस प्रकार सम्पूर्ण प्रकृति में, से, के लिए सत्तामयता, ऊर्जा के रूप में प्रमाणित है। सत्तामयता का, सम्पूर्ण अवस्थाओं में पाई जाने वाली प्रकृति में पारगामी होना ही, मुख्य रूप में ऊर्जा का स्वरूप है। इसका परीक्षण एवं प्रमाण हर छोटे से छोटे अंश, जैसे परमाणु, परमाणु में निहित एक एक अंश और उसको यदि विभाजित करें – ऐसे हरेक भाग का गतिशील होना पाया जाता है। इससे सहज पता चलता है कि सम्पूर्ण प्रकृति ऊर्जा में भीगी हुई है। यही सत्तामयता के पारगामी होने का प्रमाण है। सत्तामयता में सम्पूर्ण प्रकृति और सम्पूर्ण प्रकृति में सत्तामयता ओतप्रोत रूप में है – ऐसा पाया जाता है। प्रकृति न हो, ऐसी स्थिति में सत्तामयता को पहचानने वाला अर्थात जानने, मानने, पहचानने, वाला नहीं रह पाता है। दूसरी विधि से ऐसा होना संभव नहीं है। सत्ता न हो, ऐसे स्थान पर प्रकृति को पाना संभव नहीं है। कहीं भी पाएंगे तो सत्तामयता में सम्पूर्ण प्रकृति ओत–प्रोत है – यही "सह–अस्तित्व'' का मूल रूप है। सह–अस्तित्व, अस्तित्व सहज नित्य वर्तमान है और इसका वैभव है। अस्तित्व सहज रूप में **द्रष्टा पद** में स्थित मनुष्य को यह पता लगता है कि सत्तामयता स्थितिपूर्ण है। सत्तामयता में स्थित सम्पूर्ण प्रकृति स्थितिशील है। "स्थितिपूर्ण'' का तात्पर्य निरंतर महिमा संपन्नता से है। परम महिमा यही है कि प्रकृति में दिखने वाले सम्पूर्ण बल का नियंत्रण और संरक्षण, स्वरूप में बोधगम्य (ज्ञातव्य) है। सत्तामयता का अर्थ निरपेक्ष ऊर्जा और परम बल सहज रूप में नित्य वैभवित रहने से है। **(अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर: 7–8)**
- मानव का सम्पूर्ण अध्ययन मध्यस्थ दर्शन में सपन्न किया गया। अस्तित्व दर्शन के आधार पर यथा पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था और ज्ञानावस्था की सहज स्थितियों का अध्ययन किया गया। इसी क्रम में अस्तित्व में, ज्ञानावस्था में मनुष्य को पहचाना गया। ज्ञानावस्था का तात्पर्य **द्रष्टा पद** प्रतिष्ठा में कर्ता, भोक्ता और पुन: द्रष्टा के रूप में जीने के कार्यक्रमों सहित अभिव्यक्त, संप्रेषणाशील और प्रकाशित होने से है। **(अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर: 11)**
- जानने–मानने और पहचानने–निर्वाह करने के लिए अस्तित्व ही सम्पूर्ण वस्तु है। अस्तित्व में ही जीवन और जीवन जागृति प्रमाणित होती है तथा अस्तित्व में ही रासायनिक द्रव्यों से गर्भाशय में रचित रचना रूपी मानव शरीर भी सहज सुलभ होता है। यह दोनों अर्थात जीवन जागृति और मानव शरीर के सह–अस्तित्व में ही मानवीयता सहज वैभव का प्रमाणित होना पाया जाता है। इस प्रकार मानव परम्परा में ही, जीवन जागृति प्रमाणित होने की नियति सहज व्यवस्था है। नियति का मतलब, अस्तित्व में नियम–पूर्ण स्थिति, गति से है। नियम ही न्याय, न्याय ही धर्म, धर्म ही सत्य, सत्य ही अस्तित्व, और अस्तित्व ही नियम के रूप में देखने को मिलता है। इन सभी स्थितियों को सत्यापित करने वाला मनुष्य ही है। इसे सत्यापित करने के लिए अस्तित्व ही सम्पूर्ण वस्तु है। अस्तु अस्तित्व ही त्रिकालाबाध सत्य है। ऐसा होने के कारण जो कुछ भी सत्यापन मनुष्य करता है, उसका अस्तित्व सहज होना, परम आवश्यक है, यह समझ में आता है। समझने का तात्पर्य भी जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह

करना ही है। समझने वाली वस्तु, जीवन्त मानव ही है। इस प्रकार दोनों ध्रुव स्पष्ट हो जाते हैं। समझने वाली वस्तु जीवन है। समझने के लिए सह अस्तित्व ही है। इस प्रकार जीवन ही दृष्टा है यह स्पष्ट हुआ। देखने वाला ही समझ सकता है। देखने का तात्पर्य भी समझना ही है। इसमें और भी खूबी यह है कि जीवन भी अस्तित्व में अविभाज्य है। इस प्रकार अस्तित्व ही सभी अवस्थाओं में है, यह स्पष्ट हो जाता है। यथा पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था, ज्ञानावस्था। ज्ञानावस्था में, जागृतिसहज व्यवस्था है। जागृत अवस्था में प्रमाणित अवस्था और इनकी परंपराएं, नियति सहज व्यवस्था हैं। नियति का तात्पर्य भी नियमपूर्ण स्थिति गति से है। नियमपूर्ण स्थिति गति हर अवस्था में देखने को मिलती है। इस प्रकार जीवन दृष्टा है इस आधार पर सम्पूर्ण अस्तित्व ही, जीवन में, जीवन से, जीवन के लिए दृश्य है– यह समझ में आता है। इस तथ्य से यह स्पष्ट है कि अस्तित्व ही सभी अवस्थाओं में अथवा पदों में वर्तमान रहता है। अस्तित्व में ही, **द्रष्टा पद** प्रतिष्ठा भी वर्तमान है। मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान, जागृतिपूर्ण जीवन का अध्ययन है और मानव परम्परा में प्रमाणित होने की विधियों से सम्पन्न है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 38–39)**

- (स्वामी) साथी :– (१) सर्वतोमुखी समाधान प्राप्त व्यक्ति। ऐसे व्यक्ति का ही, किसी और व्यक्ति के अभ्युदय के लिए, साथी होना संभव है। अभ्युदय ही सर्वजन आकांक्षा है। इसे सफल बनाना, मानव परम्परा है। इसमें (अर्थात अभ्युदय में) पारंगत व्यक्ति दूसरों को अभ्युदयशील, अभ्युदयपूर्ण प्रमाणित करने के क्रम में, साथी (स्वामी) का पद पाता है। (2) “स्वयं ईक्षयतेति सा स्वामी’’ स्वयं स्फूर्त विधि से **दृष्टा पद** में हो। ’’ इच्छयेते इति सा स्वामी”। स्वयं को जो पहचान चुका है, जान चुका है, मान चुका है, वे निर्वाह करने के क्रम में साथी (स्वामी) कहलाते हैं।**(अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर: 60)**
- मनुष्य भी अस्तित्व में अविभाज्य है और **द्रष्टा पद** प्रतिष्ठा सम्पन्न है। यही अनुभव क्षमता का प्रमाण है। अनुभव क्षमता ही, **दृष्टा पद** में प्रकाशित है। **दृष्टापद**, विकास व जागृति की महिमा है। जागृति प्रत्येक मनुष्य का अभीष्ट है क्योंकि जागृति पूर्वक ही मनुष्य का निर्भ्रम और सफल होना अस्तित्व सहज है। जागृति ही अनुभव प्रकाश है। मनुष्य जीवन और शरीर के, संयुक्त रूप में प्रकाशित है। जागृति क्रम में मनुष्य, अग्रिम जागृति का प्रयास करते आया है। अभी भी प्रामाणिकता पूर्ण पद्धति, प्रणाली, नीति पूर्वक जीने की कला का समृद्ध होना समीचीन है। मानव परम्परा उनकी धारक–वाहक है, हर मानव संतान को इसकी अवश्यकता है। यह परम्परा है। **(अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर: 77)**
- यह प्रत्येक व्यक्ति में प्रमाणित होना ही जागृति है। इस तथ्य को प्रत्येक व्यक्ति में सर्वेक्षित किया जा सकता है, क्योंकि प्रत्येक मानव संतान जन्म से ही न्याय का याचक, सही कार्य–व्यवहार करने का इच्छुक और सत्य–वक्ता होता है। इसकी तृप्ति के लिए क्रमश: नियम पूर्ण व्यवसाय से समृद्धि, न्याय पूर्ण व्यवहार से अभय, मानव धर्म (समाधान) पूर्ण व्यवस्था से सर्वतोमुखी समाधान है तथा अस्तित्व रूपी परम सत्य–बोध सहज सह–अस्तित्व में, से, के लिए सम्पूर्ण तृप्तियां, मानव सहज रूप में, **द्रष्टा पद** प्रतिष्ठावश, नित्य समीचीन है।

मनुष्य **द्रष्टा पद** में सुनिश्चित अभिव्यक्ति है। इस साक्ष्य में वह जीवों का द्रष्टा है ही। जीवों को पहचानना, सर्वाधिक मनुष्यों से संभव हो चुका है। इसी प्रकार प्राणावस्था, पदार्थावस्था में वस्तुओं को पहचानना प्रमाणित हो चुका है। मानव द्वारा, मानव को पहचानना ही अथक प्रयासों के उपरान्त भी प्रतीक्षित ही रहा है।

ऐसे पहचान के क्रम में, मानव संचेतना को, उसके कार्य, प्रयोजन, संभावनाओं को, आवश्यकताओं के तारतम्य में अध्ययन करना एक जरुरत रही है। इस विधि से प्रत्येक मनुष्य का, स्वयं में संचेतना को पहचानना संभव हो जाता है। संचेतना का सम्पूर्ण रूप जानना– मानना, पहचानना – निर्वाह करना ही है। **द्रष्टा पद** का यही साक्ष्य है। ऐसे गुण सबमें विद्यमान हैं। **(अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर: 95–96)**

- पति–पत्नी का मानस, परिवार के आकार में, सुदृढ़ होना ही एक मन, दो शरीर का तात्पर्य है। साथ ही जीवन जागृति का संकल्प होना, एक मन दो शरीर का तात्पर्य है। जीवन जागृति प्रत्येक मनुष्य की अभीप्सा है। जीवन जागृति, जीवन–विद्या (ज्ञान) बोध होने के उपरान्त है। यह जीवन क्रिया कलापों के अंतर्सम्बन्ध को, परस्पर जीवन प्रभाव क्षेत्र अनुबन्ध क्रम से स्पष्ट करता है। निरीक्षण, परीक्षण विधिपूर्वक अभ्यास से, **द्रष्टा पद** प्रतिष्ठा सहज ही प्रमाणित होता है। **द्रष्टा पद** प्रतिष्ठा को प्रमाणित करना ही यतीत्व व सतीत्व का तात्पर्य है। एक पत्नी व्रत, एक पतिव्रत भी, यतीत्व और सतीत्व का प्रमाण है। इस प्रकार स्वानुशासन के रूप में **द्रष्टा पद** का, जीवन–जागृति का प्रमाण, मानव सहज है। **(अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर: 102)**
- मनुष्य अपनी **दृष्टा पद** प्रतिष्ठा में, देश, काल, दिशा को, सहज ही पहचानने व निर्वाह करने योग्य है। रासायनिक–भौतिक रचना में जो विस्तार दिखाई पड़ता है और एक रचना तथा दूसरी रचना की परस्परता में दिखने वाली दूरी पर, सह–अस्तित्व के रूप में देश है। इसका तात्पर्य यह है कि सत्ता में संपृक्त प्रकृति ही सह–अस्तित्व है। सत्ता रूप साम्य ऊर्जा परस्पर इकाईयों अथवा रचनाओं के बीच दिखने वाली दूरी है और सत्ता हर वस्तु में पारगामी परस्परता में पारदर्शी है। इस प्रकार देश, स्पष्ट हुआ। ऐसे 'देश' में, रचना और इकाईयों की परस्परता में दिशा की स्थिरता है। क्योंकि ऊर्जा स्थिर है। सम्पूर्ण रचना और इकाइयां स्थिति और गति सहित व्यवस्था रूप में निश्चित और वर्तमान हैं। इसे प्रक्रिया के रूप में इकाई अथवा रचना में किसी एक ध्रुव बिंदु के आधार पर, अनेक कोणों मे निकाला जाता है। ऐसे प्रत्येक कोण, किसी एक दिशा सूचक, दूसरी विधि से, किसी एक की नैसर्गिकता में (अर्थात किसी एक के सभी ओर जो इकाईयां हैं वह सब) उन उनके कोणों से, दिशा के रूप में वांछित इकाई की स्थिति की दिशा को स्पष्ट कर देता है। **(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर: 115)**
- मनुष्य सहज आचरण, व्यवहार व व्यवस्था, मानव की अपनी जागृति सहित, सम्पूर्ण होने का साक्ष्य है। सम्पूर्ण मनुष्य, जागृति के आधार पर ही अपनी संपूर्णता का मूल्यांकन करते हैं। जीवन के सभी आयाम अभिव्यक्ति क्रम व लक्ष्य के योगफल में प्रमाणित होते हैं। जागृत मानव सहज **द्रष्टा पद**, प्रामाणिकता व सर्वतोमुखी समाधान के रूप में प्रमाणित होना पाया जाता है। **(अध्याय: 5.3, पृष्ठ नंबर: 140–141)**

- अस्तित्व में मानव परम्परा की एक सहज गति है। यह मानवीय शिक्षा सह–अस्तित्व सहज जीवन विद्या व वस्तु विद्या (वस्तु विद्या रासायनिक भौतिक क्रिया कलापों के रूप में प्रमाणित है) से परिपूर्ण, मानवीय संस्कार (सम्बन्धों व मूल्यों की पहचान व निर्वाह) परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था है, और मानवीयता पूर्ण आचार संहिता रूपी, समाधान है। ऐसी मानव परम्परा में प्रत्येक मनुष्य, परिवार में और परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में, भागीदारी सम्पन्न होता है। यही मानव परम्परा, अस्तित्व में सहज वर्तमान, प्रभावी होता है। अस्तित्व में जीवावस्था, प्राणावस्था व पदार्थावस्था में भी सहज परम्परा है। सहज परम्परा का तात्पर्य नियमित, नियंत्रित, सन्तुलित रूप में होने से है, जिसका प्रमाण, प्रत्येक एक अपने "त्व'' सहित व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी से है। यह ही सह–अस्तित्व में होने का प्रमाण है। इस प्रकार सत्य, नित्य वर्तमान रूपी सह–अस्तित्व है। यही शाश्वत धर्म है। ज्ञानावस्था में होने के कारण अस्तित्व सहज विधि से जागृति पूर्वक मानव, **द्रष्टा पद** प्रतिष्ठा में है। **द्रष्टा पद**, सहज रूप में, अस्तित्व को जानना–मानना समीचीन है। इससे मनुष्य का प्रमाणित होना ही सत्य द्रष्टा कर्ता, भोक्ता होने का प्रमाण है। साथ ही, मनुष्य द्वारा ही, अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था को पहचानना, निर्वाह करना, जागृति सहज अभिव्यक्ति है। यही मानव धर्म परायण होने का प्रमाण है। मानवता ही, मानव धर्म है। मानवत्व सर्व मानव में, से, के लिए समान वस्तु है, व्यवहार है और महिमा प्रयोजन है। मानव धर्म जागृति परम्परा के रूप में है। मानव धर्म और राज्य, अविभाज्य है। मानव धर्म (सर्वतोमुखी समाधान) अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में, सामरस्यता की निरंतर गति है। **(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर: 146–147)**
- न्याय, प्रत्येक व्यक्ति के लिए जीवन सहज रूप में अपेक्षित शुभकारी वर्तमान है। वर्तमान का तात्पर्य, स्थिति–गति की निरंतरता है। सह– अस्तित्व, अपने में, स्थिति–गति सहित वैभवित है। उसकी निरंतरता ही वर्तमान है। अस्तित्व स्वयं सत्ता में संपृक्त प्रकृति है। इसका, सह–अस्तित्व रूप में होना, वर्तमान सहज है। सह–अस्तित्व ही, स्थिति व गति के रूप में देखने और समझने को मिलता है। सत्ता, अर्थात साम्य रूप में स्थित ऊर्जा में सम्पूर्ण प्रकृति अर्थात सम्पूर्ण इकाईयां संपृक्त हैं। संपृक्त होने के फलस्वरूप अविभाज्यता व सह–अस्तित्व प्रमाणित है। सत्ता, अपने स्वरूप में व्यापक–साम्य है, यह समझ में आता है। "व्यापक'' – इस नामकरण का तात्पर्य यह है कि – "सत्ता कहां तक फैली है ? इसका अंत कहां है ? – इसका पता नहीं लगता। सत्ता में प्रत्येक एक का, स्थिति–गति में होना, देखने को मिलता है। इस प्रकार सत्ता, व्यापक रूप में, स्थिति पूर्ण है, तथा इसकी निरंतरता है। सत्ता में संपृक्त प्रकृति, स्थिति और गति के, अविभाज्य रूप में संपूर्णता व पूर्णता के अर्थ में स्थितिशील है। ऐसी प्रकृति इस धरती में चार अवस्थाओं में स्पष्ट हो चुकी है। चौथे पद में जागृत मानव, **द्रष्टा पद** को पा चुका है। **द्रष्टा पद** के आधार पर ही, यह अस्तित्व कैसा है ? यह समझ में आ गया है। कितना है ? – इसका उत्तर मनुष्य की आवश्यकतानुसार मिलता ही रहेगा, यह भी समझ में आया है। इस प्रकार, आवश्यकतानुसार अस्तित्व में सब कुछ समझ में आता है। इसी क्रम में न्याय, धर्म, सत्य मानव कुल सहज अभिव्यक्ति, संप्रेषणा व प्रकाशन है। **(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर: 149)**

- ...मनुष्य अपने **द्रष्टा पद** प्रतिष्ठा क्रम में ही सम्पूर्ण क्रिया, स्थिति, गति, विकास, परिणाम, परिवर्तन और जागृति को पहचानता है। प्रमुख बात यह है कि मनुष्य ही काल का द्रष्टा होता है, न कि काल मनुष्य को व्याख्यायित कर पाता है।... **(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर: 174)**

(काल :– काल, क्रिया की अवधि के रूप में गणना किया जाता है। नित्य वर्तमान ही काल है। सम्पूर्ण क्रियाएं निश्चित अवधि के अनंतर पुन: आवर्तित होती हैं अथवा परिणाम और परिवर्तन समस्या समाधान को प्राप्त करती हैं। इसी क्रम में काल गणना का होना पाया जाता है। इसलिए, क्रिया की अवधि = काल की पहचान मानव ने की है। इसी आधार पर प्रत्येक क्रिया को, काल की अवधि में देखने का प्रयास मानव करता है। प्रत्येक क्रिया अपने में नियति सहज निरंतर है। मनुष्य जो काल की अवधि में, क्रियाओं को प्रमाणित करने गया, वह केवल जड़ प्रकृति के साथ आंशिक रूप में सफल हो पाया, जो यंत्र संसार है। उल्लेखनीय बात यह है कि, सम्पूर्ण यंत्र मनुष्य की कर्मेन्द्रियों व ज्ञानेन्द्रियों की गति को, विपुल (अर्थात अधिकाधिक गति) बनाने के क्रम में सार्थक हुए हैं। यही दूर संचार क्रिया कलाप है। कर्मेन्द्रियों व ज्ञानेन्द्रियों की स्वभाव गति जीवन जागृति पूर्वक सामाजिक हो पाती हैं। जागृति हर मनुष्य को स्वीकृत है। काल का द्रष्टा मानव है इसलिए किसी क्रिया की अवधि में अर्थात् भौतिक क्रिया की अवधि में मानव व्याख्यायित नहीं हो पाता। अस्तित्व नित्य वर्तमान है, सह–अस्तित्व नित्य वर्तमान है। भौतिक रासायनिक क्रिया–कलाप नित्य वर्तमान है, जीवन नित्य है ही। इस प्रकार काल की अवधि में किसी भी वस्तु की सटीक व्याख्या संभव नहीं है। क्योंकि वस्तु की क्रियाशीलता निरंतर है। सहज तथ्य यही है कि हर अवस्था पद में स्थित हर वस्तुओं को वर्तमान के आधार पर पूर्णतया समझा जा सकता है क्योंकि हर एक वस्तु अपने रूप, गुण स्वभाव सहित अपने वातावरण सम्पन्न पाया जाता है यह अध्ययनगम्य है। इसी सत्यतावश अध्ययनगम्य कराने के क्रम में ही यह मनोविज्ञान शास्त्र प्रस्तुत है। **मनुष्य अपने द्रष्टा पद प्रतिष्ठा क्रम में ही सम्पूर्ण क्रिया, स्थिति, गति, विकास, परिणाम, परिवर्तन और जागृति को पहचानता है। प्रमुख बात यह है कि मनुष्य ही काल का द्रष्टा होता है, न कि काल मनुष्य को व्याख्यायित कर पाता है। कालखंड की सीमा में मानव व्याख्यायित नहीं हो पाता।** क्रिया की अवधि को काल के रूप में गणना करना इसलिए आवश्यक है कि प्रत्येक संयोग–वियोग घटनाओं को, फल परिणाम घटनाओं को, परिवर्तन घटनाओं को काल और संख्या क्रम में गणना करते है। जबकि सम्पूर्ण वस्तु क्रिया निरंतर बना ही रहता है। जैसे – शरीर रचना की एक निश्चित अवधि में आरंभ होना, शिशु, बाल्य, कौमार्य, यौवन, प्रौढ़ और वृद्ध अवस्थाओं को पार करता हुआ एक दिन शरीर विरचित हो ही जाता है। इस अवधि को हम काल के नाम से जानते है। जबकि रचना–विरचना अनुस्युत क्रिया है। रचना–विरचना नित्य निरंतर होने वाली घटना है साथ ही रचना में सम्मिलित होने वाली वस्तुएं अस्तित्व में रहती ही हैं। अस्तु काल गणना, किसी क्रिया की अवधि के रूप में पहचानी गई है जैसे यह धरती अपने में सूर्योदय से सूर्योदय तक। काल का द्रष्टा होने का तात्पर्य क्रिया, और क्रिया की अवधि, धटना, परिणाम, स्थिति, गति, अनंत, व्यापक का द्रष्टा होने से है। इस प्रकार अस्तित्व द्रष्टा भी मानव है। अस्तित्व सहज रूप में नित्य वर्तमान है। अस्तित्व अपने में न कोई

शुरूआत है, न कोई अंत है। ग्रह गोलों के सम्बंध में वे कितनी संख्या में अस्तित्व में है इसकी आवश्यकता मानव जाति को नहीं है। जितनी आवश्यकता बनती है उतने में से कुछ ग्रह–गोलों को मानव समझने का प्रयत्न करता ही है। अभी तक इस धरती के मानव ने जो पता लगाने की कोशिश की है उसमे सकारात्मक सार्थक उद्देश्य कुछ भी नहीं रहा। इन प्रयासों के चलते दूरसंचार कार्य सार्थक हो गया। यही सकारात्मक भाग है। हर छोटी से छोटी या बड़ी से बड़ी वस्तु का अस्तित्व बना ही रहता है। विकास क्रम और रचना क्रम में जो परिणाम होते हैं, उसकी अवधि को समझा जाना संभव है। जैसे एक बीज बोकर नैसर्गिकता के संयोग सहित पुन: बीज पर्यन्त अवधि को पहचाना जा सकता है। विभिन्न द्रव्यों का संयोग कर, रासायनिक रूप में परिणामों को देखा जा सकता है। इसकी अवधि भी समझी जाती है। किसी वस्तु को अम्लीय–क्षारीय संयोग में लाकर उसके परिणाम को पहचाना जा सकता है इसकी अवधि को आकलित किया जा सकता है। जीव और मनुष्य शरीर, प्राणकोषाओं से रचित भ्रूण सूत्रों का रासायनिक वैभवों के संयोग से विपुलीकरण विधि और ऐसे भ्रूण सूत्रों से संपादित एवं रचित रचनाओं की अवधियों को पहचानना सहज है, इसका आकलन संभव है। इस प्रकार हर रचना की विरचना का भी आकलन होता है। इन्हीं सहज तथ्यों के आधार पर, सम्पूर्ण यंत्रों की रचना विधि, कार्य विधि, उपयोग विधि पहचानने में आती है। जिसका आकलन सहज है। इस प्रकार मनुष्य के द्वारा पहचानी हुई क्रिया की अवधि रूपी काल की महिमा के वर्चस्व को मानव सुविधा के रूप में देखा जाता है। यही सब मानव से मान्य काल का प्रयोजन है। इन सबकी अवधित कार्य की निरंतरता से नित्य वर्तमान स्पष्ट होता है। (**अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर: 173–175**)

- अस्तित्व नित्य वर्तमान होने के कारण, वर्तमान अक्षुण्ण सहज है, इसलिए इसका काल खंड संभव नहीं है। मानव सहज कल्पनाशीलता का प्रयोग करने के उपरान्त ही, वर्तमान समझ में आता है, साथ ही कल्पना का सम्पूर्ण आधार और प्रेरणा, अस्तित्व और वर्तमान ही है। अस्तित्व सहज सह–अस्तित्व होना ही विकास, जीवन, जीवन–जागृति, पूरकता, उदात्तीकरण, रचना व विरचानाएं सतत वर्तमान हैं। कितने भी विखंडन के उपरान्त, एक का सहज रहना, वर्तमान रहता है। समग्र अस्तित्व का भाग पूर्वक, मनुष्य जितना भी प्रयत्न करे, प्रत्येक "एक'' अस्तित्व में अविभाज्य होना प्रमाणित है। सम्पूर्ण अस्तित्व सत्ता में संपृक्त सहज अस्तित्व होना वर्तमान है। सत्ता स्थितिपूर्ण व्यापक है, सत्ता में संपृक्त अनंत एक एक प्रकृति है। मानव कितना भी नापे और नापने की वस्तु समीचीन रहती ही है। और कितना भी गिने पुन: गिनने के लिए वस्तु समीचीन रहती ही है। इसलिए अस्तित्व व्यापक, अनंत के रूप में वर्तमान है। अस्तु, अस्तित्व, अविरत वर्तमान है। सम्पूर्ण भावों का होना, वर्तमान सहज महिमा है। वास्तविकता यथार्थता व सत्यता, स्थिति सत्य, वस्तु स्थिति सत्य, वस्तुगत सत्य, सहज रूप में जानने–मानने, पहचानने–निर्वाह करने के रूप में है। प्रत्येक एक का अपने रूप, गुण, स्वभाव, धर्म सहज अविभाज्यता ही भाव है। भाव सहजता भी वर्तमान में होना ही है। सत्तामयता ही अस्तित्व में स्थिरता सहज भाव है और सत्ता में संपृक्त प्रकृति विकास और जागृति सहज निश्चयता का प्रमाण है। सत्ता का व्यापक होना स्थिरता का और सत्ता में संपृक्त प्रकृति, विविधता सहित जागृति रूप में, विकास में निश्चयता का प्रमाण नित्य वर्तमान है।

ऐसी स्थिरता, निश्चयता सहज वर्तमान है। यह मानव संचेतना, जीवन–जागृति, **द्रष्टा पद** वैभव का सहज प्रमाण है। **(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर: 175– 176)**

- मानव का अध्ययन ही जागृत मानव परम्परा के लिए प्रमुख कार्य है। अस्तित्व में जागृत मनुष्य ही **द्रष्टा पद** में है। जागृत मनुष्य अपने जीवन के रूप में द्रष्टा है। शरीर के रूप में मानव परम्परा है। साथ ही परम्परा की संपूर्णता, मानवीय शिक्षा संस्कार, मानवीय संविधान और मानवीय परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था है, यह **दृष्टा पद** के आधार पर ही सार्थक होता है। यही अध्ययन, अवधारणा, अनुभव योजना, कार्य योजना का फलन है। इसके लिए सार्थक श्रुति आवश्यक है ही। मानव कुल की अखंडता, सार्वभौमता व अक्षुण्णता नियति सहज विधि से समीचीन है, क्योंकि अस्तित्व में विकास और जागृति प्रसिद्ध है। प्रसिद्धता का तात्पर्य मानव समझ चुके है। लोकव्यापीकरण हो चुका है। परम्परा बन चुकी है अथवा समझ सकते है। लोक व्यापीकरण कर सकते है। परम्परा बना सकते है। वैभवित हो सकता है। इस क्रम में नियति अर्थात् अस्तित्व सहज विकास क्रम, विकास, जागृति क्रम, जागृति ध्रुवों के आधार पर स्पष्ट है। जागृति मानव का गम्य स्थली है, तब तक मानव जागृति क्रम में ही गण्य हो जाता है। जागृति क्रम में निश्चयन श्रृंखला, जागृति श्रृंखला की प्यास ही रह पाता है, परिणामस्वरूप गम्य स्थली के लिए बाध्यता निर्मित होता ही है। **(अध्याय: 5.31, पृष्ठ नंबर: 194)**
- मेधस के द्वारा ज्ञानवाही विधि से, सम्पूर्ण शरीर में जीवंतता का प्रभाव क्षेत्र बना ही रहता है। मेधस पर जीवन का, संकेतों के रूप में जो प्रभाव प्रभावित रहता है, वही सर्वाधिक पांचों ज्ञानेन्द्रियों द्वारा, कार्यशील प्रवर्तनशील देखने को मिलता है। जीवन अपने में गठन पूर्ण परमाणु है, चैतन्य पद में संक्रमित इकाई है। यही जीवन प्रतिष्ठा के रूप में वैभवित है। जागृति पूर्वक जीवन अपने **द्रष्टा पद** का प्रयोग करता है और अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन करता हुआ, ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों का द्रष्टा है। यही शरीर के साथ संज्ञानशीलता का भी तात्पर्य है। इच्छानुसार इंद्रिय कार्य करना ही इन्द्रिय व्यापार है। (अथवा इंद्रिय कार्यकलाप है)। इस प्रकार जागृत मनुष्य अपने ही स्वरूप को, जीवन वैभव को, शरीर कार्यकलाप के साथ **द्रष्टा पद** के वैभव को मूल्यांकन कर सकता है। मूल्यांकन क्रम ही, जीवन प्रकाश की कांति है। इस रूप में जागृति सहज प्रभाव क्षेत्र प्रमाणित होता है। इसका तात्पर्य यह है कि जीवन का प्रभाव क्षेत्र ही कांति के नाम से इंगित होता है। **(अध्याय: 5.31, पृष्ठ नंबर: 212)**
- इच्छाएं अपने आप में रूचि मूलक, मूल्य मूलक व लक्ष्य मूलक प्रणाली से, स्वयं प्रकाशित प्रमाणित होती हैं। इच्छाएं, ईक्षण सहित छवि की महिमा के अर्थ में, मानव के क्रियाकलापों में सार्थक अथवा चरितार्थ होती हैं। इंन्द्रियों का दृष्टा है जीवन ! जीवन, भ्रमित होने के कारण इंन्द्रिय सन्निकर्षात्मक क्रिया कलाप में जीवन अपने **द्रष्टा पद** को जीने की आशा, आस्वादनापेक्षा के आधार पर सम्मोहन और आवेश पूर्वक इन्द्रिय सन्निकर्ष में तद्रुप स्वीकार लेता है। तद्रुपता का तात्पर्य मैं स्वयं इन्द्रिय हूँ। इस प्रकार की स्वीकृति में स्वयं स्वअस्तित्व भुलावा हो जाने से है। अस्तु, जीवन ही जीवन को जीवन से, जीवन के लिये बेहोशी में सुख पाने की स्वीकृति अर्थ में स्वयं की विस्मृति स्वीकृत होना पाया जाता है। परिणामस्वरूप जीवन भ्रमित रहना पाया जाता है। इस प्रकार जीवन

आस्वादनापेक्षा और इन्द्रिय सन्निकर्ष में सीमित हो जाता है। यही पशुवत जीने का आधार और प्रवृति है। जबकि जागृति पूर्वक जीवन इंद्रिय सन्निकर्ष का दृष्टा होता ही है। न्याय, धर्म, सत्यपूर्वक इन्द्रिय सन्निकर्षों को उपयोग सदुपयोग प्रयोजनशील विधि से प्रमाणित करने का कार्यक्रम स्वयं स्फूर्त विधि से होता ही है इस तथ्य को पहले भी स्पष्ट किया जा चुका है। (**अध्याय: 5.31, पृष्ठ नंबर: 218–219**)

- जीवन ज्ञान अस्तित्व दर्शन मानवीयतापूर्ण आचरण सहज अध्ययन विधि से जानने मानने वाली क्रिया बुद्धि में ही संपन्न होता है। जिसके तृप्ति के लिए अध्ययन क्रियाकलाप के साथ ही जीवन का **दृष्टा पद** साक्षी के रूप में नियोजित रहता ही है। फलतः आनन्द, धी, अस्तित्व बोध और धृति का स्वीकृति अनुभव प्रमाण के लिए स्वरित गतित रहता ही है। (**अध्याय: 5.4, पृष्ठ नंबर: 246**)
- जागृत जीवन सहज सभी क्रियाकलाप, व्यवहार में प्रमाणित होने पर्यन्त, मानव में अध्ययन कार्य परम्परा है। इसी सत्यता क्रम में अनुसंधानपूर्वक ही यह मनोविज्ञान सत्यापित है। अस्तित्व ही अस्तित्व रूप में सम्पूर्ण भाव है। जीवन ही जागृति पूर्वक **दृष्टा पद** में होने के फलस्वरूप अस्तित्व में अनुभव सहज है। सम्पूर्ण सह–अस्तित्व चार अवस्था और चार पदों में, स्थिति, गति, रूप, गुण स्वभाव, धर्म, विकास, जागृति और रचना, विरचना के रूप में होना ज्ञातव्य है। समझना, जानने मानने, पहचानने, निर्वाह करने के रूप में प्रमाणित है। जानने–मानने की तृप्ति ही, अनुभव के रूप में ख्यात है। पहचानना, निर्वाह करना, जानने मानने के उपरान्त सहज क्रिया है। जानना मानना, प्रधानतः स्वभाव, धर्म और स्थिति के रूप में समझा गया है। (**अध्याय: 5.5, पृष्ठ नंबर: 248**)

संदर्भ: मानवीय संविधान सूत्र व्याख्या

(संस्करण:प्रथम, मुद्रण:2007)

- **10. मूल्यांकन :– दृष्टापद** एवं समझदारी सहज विधि से मानव स्वयं का और अन्य का गुण–स्वभाव–धर्म सहअस्तित्व सहज उपयोगिता पूरकता के आधार पर मूल्यांकन तथा मानवेत्तर प्रकृति सहज वस्तुओं का मात्रा और गति के आधार पर मात्रा और गुणों का आंकलन। **(प्रस्तावना में प्रयुक्त शब्दों की परिभाषा से)**
- राष्ट्र
  1. **दृष्टापद** सहज जागृति पूर्ण मानव परंपरा ही राष्ट्र।
  2. मानवीय आचार संहिता रूपी संविधान का प्रभाव सहज आचरण परम्परा।
  3. मानव, मानव संस्कृति एवं सभ्यता में निरंतरता सहित, उसके संरक्षण, संवर्धन योग्य विधि–व्यवस्था सहज अक्षुण्णता सहित परम्परा। **(अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर: 17–18)**
- अनुभव
  1. अनुक्रम सहज अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन सहअस्तित्व में ।
  2. अनुक्रम सहज सहअस्तित्व में प्रमाण परंपरा में, से, के लिए विकास क्रम, विकास, जागृति क्रम, जागृति सहज निरंतरता की स्वीकृति ।
  3. अनुक्रम विधि में तद्रूप क्रिया, तदाकार प्रमाण ही अभिव्यक्ति संप्रेषणा प्रकाशन ।

     तदाकार = सहअस्तित्व में अनुभव प्रमाण स्वरूप में मानव स्वयं होना जागृति है ।

     तद्रूप = ज्ञान अनुभव सम्पन्नता ही **दृष्टा पद** है । **(अध्याय: 3, पृष्ठ नंबर: 26–27)**
- शिष्टता
  1. समझदारी–ईमानदारी–जिम्मेदारी–भागीदारी सहज प्रमाण होना।
  2. **दृष्टा–पद** प्रतिष्ठा का जागृति सहज प्रमाण होना ।
  3. मानवीयता पूर्ण आचरण सहज प्रमाण होना । **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 83)**
- न्याय–सुरक्षा–सार्थकता मूल्यांकन–विधि
  1. सहअस्तित्व में हर मानव जागृति सहज वर्तमान ही ज्ञान–सम्मत इच्छा–क्रिया व व्यवहार प्रमाण न्याय सुरक्षा है ।
  2. सहअस्तित्व में जागृति सहज प्रमाण परंपरा ही सम्बन्ध, मूल्य, मूल्यांकन, परस्पर तृप्ति सन्तुलन न्याय सुरक्षा है ।

3. सहअस्तित्व में–से–के लिए विकास क्रम, भौतिक–रासायनिक क्रिया , जीवन क्रिया–कलाप, जीवनी क्रम जागृति क्रम, भ्रमित मानव क्रिया, जागृति मानव चेतना सहज मानव व्यवहार कार्य को समझने के उपरान्त ही **दृष्टा–पद** प्रमाणित होता है।
4. सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व दर्शन ज्ञान, जीवन–ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान = सम्पूर्ण ज्ञान

अनुभव मूलक विधि से अभ्युदय के अर्थ में प्रमाणित होना ही सत्य प्रमाण है । यही विवेक–विज्ञान सम्मत विधि से सर्वतोमुखी समाधान ही मानव धर्म का प्रमाण, अखण्ड समाज सूत्र के अर्थ में सार्वभौम व्यवस्था सहज परंपरा ही सम्बन्ध, मूल्य, मूल्यांकन विधि से न्याय सुरक्षा प्रमाणित होता है । यही जागृत परंपरा का वैभव है। (**अध्याय: 7, पृष्ठ नंबर:** 108–109)

- न्याय–सुरक्षा
  1. जागृत मानव परंपरा में ही सर्वतोमुखी न्याय सुरक्षा प्रमाणित होता है । सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व में न्याय जागृति सहज नित्य वर्तमान है । यही जागृत होने, ज्ञान शक्ति संपन्न होने का प्रमाण और सार्वभौम व्यवस्था में प्रमाणित होने का सूत्र, **दृष्टा–पद** प्रतिष्ठा पीढ़ी से पीढ़ी में होना परंपरा है ।
  2. **दृष्टा पद** में जागृत मानव ही है । **दृष्टा पद** में समझदारी (ज्ञान–विवेक–विज्ञान सम्पन्नता) जागृति प्रमाण परंपरा है ।
  3. **दृष्टा–पद** में ही मानव में–से–के लिए सम्पूर्ण पदार्थावस्था मृदा–पाषाण–मणि–धातुएं परिणामानुगामी विधि से यथा स्थिति में पूरकता–उपयोगिता उदात्तीकरण क्रिया कलाप में दृष्टव्य है ।
  4. सम्पूर्ण प्राणावस्था में क्रिया–कलाप यौगिक विधि सहित रसायन द्रव्य, प्राण–सूत्र–रचना–विधि सम्पन्नता, प्राण–कोशा से उन प्रजातियों के रूप में बीज–वृक्ष विधि से परम्परा सम्पन्न रचनायें होना दृष्टव्य है ।
  5. सम्पूर्ण जीव–संसार अनेक प्रजातियों के रूप में सप्त धातु से सम्पन्न शरीर–रचना और समृद्ध मेधस सम्पन्नता युक्त शरीर रचना और जीने की आशा सहित जीवन का संयुक्त रूप में होना दृष्टव्य है। जिन जीवों में मानव संकेत ग्रहण होता है यह जीवन का पहचान है।

  सम्पूर्ण मानव ज्ञान सम्पन्नता में होना हर जागृत मानव में–से–के लिये दृष्टव्य–ज्ञातव्य कर्तव्य बोध होना पाया जाता है। फलस्वरूप न्याय व सुरक्षा सर्व सुलभ होता है । (**अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:** 109–110)

- न्याय–सुरक्षा
  1. हर मानव जागृति पूर्वक जीने के क्रम में न्याय प्रमाणित होता ही है। ऐसे नर–नारियों की परस्परता में न्याय–सुरक्षा सुरक्षित रहता है क्योंकि मानवीयतापूर्ण आचरण जागृति का प्रमाण है जिसके फलन में न्याय–सुरक्षा वर्तमान रूप में सफल होता है।

2. जागृत मानव में–से–के लिए सहअस्तित्व प्रमाणित होना और 'जीवन' ही **दृष्टा–पद** में होने का साक्ष्य सदा बना रहता है।

'जीवन' जागृति पूर्वक **दृष्टा–पद** प्रतिष्ठा होता है ।

हर जागृत नर–नारी न्याय–सुरक्षा कार्य में भागीदारी करने का प्रमाण ही परंपरा सहज सूत्र है ।

जागृत मानव सहज कार्य–व्यवहार व्याख्या ही सर्वतोमुखी समाधान प्रमाण और वर्तमान परंपरा है ।

जागृत मानव परंपरा ही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था, विधि–विधान नीति सहज स्थिति गति है ।

''समुदाय समाज नहीं, समाज समुदाय नहीं ''

(हर समुदाय दूसरे समुदाय से मतभेद–बैर–विरोध पूर्वक ही समुदाय अपने में पहचान है ।)

अखण्ड समाज व्यवस्था में भागीदारी ही सार्वभौमता और न्याय सुरक्षा है । **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर: 111–112)**

- शिष्टतापूर्ण दृष्टि :– अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन रूपी दृष्टि **दृष्टा पद** प्रतिष्ठा में पारंगत क्रियाशील रहना। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर: 126)**
- मानवीय शिक्षा का फलन ही मानवीय आचार संहिता रूपी संविधान–व्यवस्था व आचरण–मूल्यांकन परंपरा ही अखण्ड–समाज सूत्र सहित व्याख्या में पारंगत होना पाण्डित्य है । यही मन:स्वस्थता का प्रमाण है । यही **दृष्टा–पद**–प्रतिष्ठा का वैभव व जागृति सहज प्रमाण रूप में सौभाग्य है । **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर: 137)**
- समाधान = सहअस्तित्व सहज समझ ।

अस्तित्व स्थिर है, विकास व जागृति निश्चित है ।

सहअस्तित्व में जीवन जीवनीक्रम, जीवन जागृतिक्रम, जीवन–जागृति, जागृति सहज निरन्तरता सहज समझ समाधान सम्पन्न परंपरा ही जागृत मानव परंपरा है ।

1. व्यापक सत्ता में सम्पृक्त जड़–चैतन्य प्रकृति को अध्ययन पूर्वक समझना समाधान है ।
2. सत्ता में सम्पृक्त जड़ चैतन्य प्रकृति को सहअस्तित्व में अविभाज्य व नित्य वर्तमान सहज,वैभव में–से–के लिए अध्ययन पूर्वक समझना समाधान है ।
3. सहअस्तित्व परम सत्य है, यह समझना समाधान है ।
4. सहअस्तित्व सहज शाश्वीयता को समझना समाधान है । सहअस्तित्व मुद्दों के रूप में स्थिरता, निश्चयता सहज निरन्तरता को समझना समाधान है ।

5. सहअस्तित्व सहज निरन्तर स्थिरता को समझना समाधान ।
6. सहअस्तित्व सहज नित्य रूप में विकास को समझना समाधान, विकास सहज चैतन्य इकाई गठनपूर्ण परमाणु में **दृष्टा पद** प्रतिष्ठा होने का समझ समाधान है ।
7. नित्य वैभव के रूप में जागृति को समझना समाधान है ।
8. जीवन व जागृति को परम प्रयोजन के रूप में समझना समाधान है।
9. जीवन ही **दृष्टा पद** प्रतिष्ठा सम्पन्न होने को अध्ययन अनुभव पूर्वक समझना समाधान है ।
10. जीवन ही जागृति पूर्वक मानव परंपरा में प्रमाणित होने को अध्ययन अनुभव पूर्वक समझना समाधान है । **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर: 144–145)**

- समाधान

1. मानव परंपरा को सार्वभौम व्यवस्था का धारक–वाहक रूप में जागृत मानव को मानवत्व सहित व्यवस्था में पहचानना, समझना, यही समाधान है ।
2. विकास व जागृति को सुनिश्चित रूप में समझना समाधान है।
3. जागृति सहज परंपरा, प्रक्रिया व मूल्यांकन विधि को समझना समाधान है ।
4. जागृत मानव परम्परा में हर मानव **दृष्टा पद** में होने की समझ समाधान है ।
5. सर्व मानव **दृष्टापद** में प्रमाणित होने की समझ समाधान है ।
6. जीवन जागृति सहज प्रतिष्ठा में ही **दृष्टा–पद** को मानव प्रमाणित करता है यह समझ समाधान है ।
7. हर मानव **दृष्टा पद** में समझदारी–ईमानदारी जिम्मेदारी–भागीदारी को प्रमाणित करता है, यह समझ समाधान है।
8. **दृष्टा–पद** में हर मानव मानवत्व को प्रमाणित करता है । यह समझ सहित प्रमाण समाधान है ।
9. मानवत्व हर मानव के स्वत्व होने की समझ समाधान है । **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर: 147–148)**

- जागृत परंपरा ही मानव को पीढ़ी से पीढ़ी **दृष्टा पद** में प्रतिष्ठित करता है । यह समझ समाधान है । **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर: 150)**
- मानव परंपरा को **दृष्टा पद** में होने का सोच–विचार–निर्णय समाधान है । **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर: 154)**
- हर मानव–सन्तान युवकों के फलन के रूप में अनुभव प्रमाण सम्पन्नता फलित होना ही मानवीय–शिक्षा–संस्कार की सफलता है । इसका सत्यापन अभिभावक, विद्यार्थी करेंगे । अध्यापक **दृष्टा पद** में वैभव सम्पन्न होगा। **(अध्याय:9, पृष्ठ नंबर: 203)**

- नित्य उत्सव
    1. मानवीयतापूर्ण आचरण सहित व्यवहार व उत्पादन कार्य नित्य उत्सव है ।
    2. मानवीयतापूर्ण विचारों का अभिव्यक्ति सम्प्रेषणा प्रकाशन नित्य उत्सव है ।
    3. मानवीयता सहज आहार–विहार–व्यवहार नित्य उत्सव है ।
    4. जागृत मानव परंपरा में **दृष्टा पद** में नित्य उत्सव है ।
    5. जागृति सहज विधि से मानवीयता, देव मानवीयता और जागृति पूर्ण विधि से दिव्य मानवीयता पूर्वक सर्व शुभ घटना सहज परंपरायें नित्य उत्सव है ।
    6. हर नर–नारी जागृति पूर्वक व्यवस्था में जीना नित्य उत्सव है।

  सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी ही मानवीय आचार संहिता रूपी संविधान सूत्र व्याख्या नित्य उत्सव है ।

  संविधान हर नर–नारी का स्वत्व–स्वतंत्रता–अधिकार सहज अभिव्यक्ति, सम्प्रेषणा, प्रकाशन नित्य उत्सव है । मानवीयतापूर्ण आचरण जागृत मानव सहज प्रमाण है । सर्वदेश–काल में स्थित सर्व मानव जागृति सहज सम्पन्न होना–रहना चाहते हैं । सर्व मानव अथवा प्रत्येक मानव सर्व शुभ सुख, सौन्दर्य सम्पन्नता सहित स्व कल्याण सर्वशुभ संपन्न होना–रहना नित्य उत्सव है। **(अध्याय:9, पृष्ठ नंबर: 214–215)**

- **दृष्टापद** व जागृति मानव–परंपरा में ही प्रमाणित होता है। **(अध्याय: 12, पृष्ठ नंबर: 264)**
- ज्ञान संपन्नता सहज प्रमाण ही जागृति पूर्ण दृष्टि–**दृष्टा पद** सहज अभिव्यक्ति व प्रमाण और परंपरा में से के लिए त्राण व प्राण है। **(अध्याय: 12, पृष्ठ नंबर: 268)**
- **दृष्टापद** : मानव में शून्याकर्षण ही नियंत्रित संवेदना सम्पन्न प्रभाव समेत सह–अस्तित्व में अनुभव प्रमाण बोध संकल्प सहित, बोध संकल्प चिंतन चित्रण सहित, चिंतन चित्रण क्रम सहित तुलन विश्लेषण पूर्वक आस्वादन चयन क्रिया–कलाप सहित **दृष्टा पद** में होना रहना है। यही समझदारी संपन्नता है। इसके लिए स्त्रोत चेतना विकास मूल्य शिक्षा–संस्कार है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर: 273)**
- जीवन ज्ञान पूर्वक स्व –स्वरूप में विश्वास दृढ़ता ही **दृष्टा–पद** प्रतिष्ठा है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर: 276)**
- **दृष्टा–पद** प्रतिष्ठापूर्वक सह–अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीय आचरण में, से, के लिए दृढ़ता, प्रक्रिया, प्रयोजन मूल्यांकन होता है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर: 276)**
- **दृष्टा–पद** ही समझदारी का प्रमाण है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर: 276)**
- **दृष्टा–पद** सहित जागृति में ही मानवत्व सहज प्रमाण है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर: 276)**
- समझदारी पूर्ण प्रमाण सम्पन्नता ही **दृष्टा पद** है। यह परम्परा सहज देन है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर: 276)**
- **दृष्टा पद** में ही जागृति पूर्वक, सर्वतोमुखी समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व प्रमाणित होता है। यही प्रखरता है। **(अध्याय: 12, पृष्ठ नंबर: 276)**

- **दृष्टा–पद** में स्वयं स्फूर्त विधिवत प्रवृत्तियाँ कार्य–व्यवहार में प्रमाणित होती हैं। **(अध्याय: 12, पृष्ठ नंबर: 277)**
- उत्पादन–कार्य सम्बन्धों की निर्वाह विधि से किया गया कार्य–व्यवहार व समस्त व्यवस्था में भागीदारी में **दृष्टा–पद** का प्रमाण स्पष्ट होता है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर: 277)**
- **दृष्टा–पद** प्रतिष्ठा ही मानवीयता पूर्ण पहचान का आधार व प्रमाण है।**(अध्याय: 12, पृष्ठ नंबर: 277)**
- **दृष्टा–पद** प्रतिष्ठा ही जागृति सहज प्रमाण है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर: 277)**
- **दृष्टा–पद** सहज जागृति में में ही ज्ञान, विवेक और विज्ञान का स्पष्ट प्रयोजन प्रमाणित होता है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर: 277)**
- **दृष्टा–पद** में जागृत मानव ज्ञातत्व, वक्तृत्व व कृत्तत्व सम्पन्न है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर: 277)**
- मानव ज्ञानावस्था में होने के कारण ज्ञान, सह–अस्तित्व सहज दर्शन–ज्ञान, सह–अस्तित्व में ही जीवन होने के कारण जीवन–ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण–ज्ञान है। **द्रष्टा पद** में प्रतिष्ठा सम्पन्न होने के कारण समग्र ज्ञान ऊपर कहे तीन क्रम में स्पष्ट होता है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर: 288)**

संदर्भ: जीवन विद्या – एक परिचय

(संस्करण: 2010: मुद्रण: 2017)

- Not found

संदर्भ: विकल्प

(संस्करण:2011,मुद्रण: 2016)

- Not found

संदर्भ: जीवन विद्या– अध्ययन बिन्दु

(संस्करण:2011, मुद्रण:2016)

- जीवन विद्या में सर्वप्रथम ''जीवन ही **दृष्टापद** में है'' होने–रहने का अध्ययन। (**अध्याय:, पृष्ठ नंबर:** 15)
- **दृष्टापद** होने के फलस्वरूप 'जागृति' सहज प्रमाण होने का अध्ययन–
  - 20वीं शताब्दी तक मानव परंपरायें अनेक समुदाय में पहचानने की समीक्षा
  - व्यक्तिवाद, समुदायवाद पनपना सर्वविदित है
  - समीक्षा के फल में ''समुदाय समाज नहीं, समाज समुदाय नहीं'' इसका बोध होना। (**अध्याय:, पृष्ठ नंबर:** 15–16)
- **दृष्टापद प्रतिष्ठा** – (**दिव्य मानव**)

जाग्रति पूर्ण मानव स्वभाव = धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा, करुणा

दृष्टि = सत्य प्रधान समाधान न्याय

प्रवृत्ति = सर्वशुभ

सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व में अखण्डता – सूत्र व्याख्या सार्वभौमता सहज वर्तमान में प्रमाण (**अध्याय:, पृष्ठ नंबर:** 26–27)

- **दृष्टा पद प्रतिष्ठा सहज जागृति प्रमाण सम्पन्नता**

मानव ही दृष्टा, कर्ता, भोक्ता– जागृति पूर्वक

कार्य व्यवहार करने में स्वतंत्र फल भोगने में स्वतंत्र

जागृति पूर्वक किया गया सम्पूर्ण कर्म फल नियति विधि सहज होने के आधार पर फल भोगने में स्वतंत्र

नियति विधि का तात्पर्य –पूरकता, उपयोगिता सहज प्रमाण।

सकारात्मक फल आबंटन स्वीकार होता है; नकारात्मक फल कोई स्वीकार नहीं करता है। (**अध्याय:, पृष्ठ नंबर:** 27)

संदर्भ: मानवीय आचरण सूत्र

(**संस्करण: प्रथम, मुद्रण: 2003**)

- 6.39 **दृष्टा–पद** मानव–परम्परा में ही प्रमाणित होता है। (**अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 44**)
- 7.19 ज्ञान सम्पन्नता ही जागृति दृष्टि–**दृष्टा पद** की अभिव्यक्ति व प्रमाण और परम्परा में, से, के लिए त्राण व प्राण है। (**अध्याय: 7, पृष्ठ नंबर: 49**)
- 8. **जीवन, दृष्टापद**

8.27 स्व–स्वरूप में विश्वास दृढ़ता ही **दृष्टा–पद** प्रतिष्ठा है।

8.28 **दृष्टा–पद** प्रतिष्ठापूर्वक सह–अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीय आचरण में, से, के लिए दृढ़ता, प्रक्रिया, प्रयोजन मूल्यांकन होता है।

8.29 **दृष्टा–पद** ही समझदारी का प्रमाण है।

8.31 **दृष्टा–पद** में ही मानवत्व का प्रमाण है।

8.32 समझदारी पूर्ण प्रमाण सम्पन्नता ही **दृष्टा पद** है। यह परम्परा सहज देन है।

8.33 **दृष्टा–पद** में ही विवशता परवशता समाप्त होती है और सर्वतोमुखी समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व प्रमाणित होता है।

8.34 **दृष्टा–पद** में स्वयं स्फूर्त विधिवत प्रवृत्तियाँ कार्य–व्यवहार में प्रमाणित होती हैं।

8.35 उत्पादन–कार्य सम्बन्धों की निर्वाह विधि से किया गया कार्य–व्यवहार व समस्त व्यवस्था में भागीदारी में **दृष्टा–पद** का प्रमाण स्पष्ट होता है।

8.36 **दृष्टा–पद** प्रतिष्ठा ही मानवीयता पूर्ण पहचान का आधार है।

8.37 **दृष्टा–पद** प्रतिष्ठा ही जागृति का प्रमाण है।

8.38 **दृष्टा–पद** में ही विवेक और विज्ञान का स्पष्ट प्रयोजन प्रमाणित होता है।

8.39 **दृष्टा–पद** में जागृत मानव दृष्टत्व–ज्ञाता वकृत्व सम्पन्न है।

8.40 दृष्टत्व–ज्ञातत्व सहज विधि से स्वत्व अविभाज्य है। (**अध्याय:8, पृष्ठ नंबर: 56–60**)

- 13.9 मानव ज्ञानावस्था में होने के कारण ज्ञान, सह–अस्तित्व सहज दर्शन–ज्ञान, सह–अस्तित्व में ही जीवन होने के कारण जीवन–ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण–ज्ञान है। **द्रष्टा पद** में प्रतिष्ठा सम्पन्न होने के कारण समग्र ज्ञान ऊपर कहे तीन क्रम में स्पष्ट होता है। **(अध्याय: 13, पृष्ठ नंबर: 74)**

संदर्भ: संवाद भाग १

(संस्करण: प्रथम, मुद्रण: 2011)

- व्यापक वस्तु मैं अनुभव करने पर मानव **दृष्टा पद** में आता है। मानव ही अनुभव करेगा और कोई करने वाला है नहीं। मानव के अतिरिक्त इस अस्तित्व में और कोई वस्तु नहीं है जो अनुभव करे। इसीलिए मैंने मानव को जान अवस्था में पहचाना। **(अध्याय: , पृष्ठ नंबर: 159)**
- जीवन स्वयं को भी जानने वाला है और सर्वस्व को भी जानने वाला है। सर्वस्व को जानने पर "**दृष्टा पद**" और उसको जीने में प्रमाणित करने को "जागृति" कहा है। सह–अस्तित्व ही बोध का संपूर्ण वस्तु है। सह– अस्तित्व में ही जीवन है । सह–अस्तित्व में ही जीवन ज्ञान होता है। सहअस्तित्व में ही मानव है। सहअस्तित्व में ही मानवता पूर्ण आचरण ज्ञान होता है। सहअस्तित्व में ही अध्ययन है। सहअस्तित्व से विभाजित करके कोई अध्ययन पूरा होता नहीं है। **(अध्याय:, पृष्ठ नंबर: 174)**
- प्रमाणित होने की शुरुआत अनुभव मूलक चिंतन से है। उससे पहले **दृष्टा पद** है। अनुभव पूर्वक मानव **दृष्टा पद** में हो जाता है। प्रमाणित होना जीने में परंपरा के रूप में ही होता है। **(अध्याय:, पृष्ठ नंबर: 184)**
- अस्तित्व को सहअस्तित्व स्वरुप में समझने का मतलब है सहअस्तित्व में "**दृष्टा पद** प्रतिष्ठा" को पाना। मानव ही सह– अस्तित्व में अध्ययन करता है। अध्ययन का प्रयोजन ही है सह–अस्तित्व में **दृष्टा पद** प्रतिष्ठा को पाना। व्यापक और एक– एक वस्तु का सह–अस्तित्व है। यह चार अवस्था (पदार्थ अवस्था, प्राण अवस्था, जीव अवस्था और ज्ञान अवस्था) तथा चार पद(प्राण पद, भ्रांत पद, देव पद और दिव्य पद) के स्वरूप में प्रकट है । यही अध्ययन की वस्तु है। **(अध्याय:, पृष्ठ नंबर: 191)**
- अनुभव आत्मा में होता है। अनुभव के फलस्वरूप पूरा जीवन अनुभव में तदाकार हो जाता है। फलस्वरूप अनुभव जीने में प्रमाणित होता है। मेरे जीवन में यही हो रहा है। हर परिस्थिति में अनुभव को प्रमाणित करने की प्रक्रिया मेरे जीवन में चल रही है। मुझ में अनुभव–सम्पन्नता अक्षय रूप में रखा है। ऐसे ही हर व्यक्ति अनुभव–संपन्न हो जाए। अनुभव ही ज्ञान–समृद्धि का अन्तिम–स्वरूप है। समझदारी की परिपूर्णता अनुभव में ही होता है – जो "**दृष्टा पद**" है। अनुभव जब जीने में आता है – उसे ही "जागृति" कहा है। जागृति ही अनुभव का प्रमाण है। **(अध्याय:, पृष्ठ नंबर: 203)**
- जीवन में **दृष्टा पद**–प्रतिष्ठा और जागृति सहज प्रमाणों का मानव परंपरा में होना आवश्यक हो गया है। क्योंकि मानव परंपरा अपराधों से मुक्त होना चाहता है और मानव परंपरा के अपराधों से मुक्त होने की आवश्यकता है। **(अध्याय:, पृष्ठ नंबर: 240)**

संदर्भ: संवाद भाग २

(संस्करण:2013)

- तृप्ति का पहला घाट है "मैं सब कुछ समझ गया हूँ।" सह–अस्तित्व में अनुभव होने पर तत्काल स्वयं में यह स्थिति बनती है। इसका नाम है "**दृष्टा पद**"। (**अध्याय:2.1, पृष्ठ नंबर: 130–131**)
- सह– अस्तित्व में अध्ययन के फलस्वरुप जीवन जो अनुभव करता है, वह अपने में पूर्ण ही होता है लेकिन उस अनुभव का प्रगटन क्रमिक रूप से होता है। जब कभी न्याय समझ में आता है, साथ में धर्म और सत्य भी समझ में आता है। सत्य की रोशनी में ही न्याय और धर्म प्रकाशित है। सत्य अपने में प्रकाशित है ही। न्याय समझ में आ जाए, धर्म और सत्य समझ में नहीं आए ऐसा कुछ होता नहीं है। इस तरह अनुभव पूर्वक **दृष्टा पद** में हो जाते हैं। (**अध्याय:2.1, पृष्ठ नंबर: 136**)
- प्रश्न: जीवन क्रिया में ज्ञान कैसे व्यक्त हो जाता है? जड़ क्रिया में ज्ञान व्यक्ति क्यों नहीं होता है?
  उत्तर: चैतन्य परमाणु में घूर्णन और वर्तुलात्मक गति के योगफल में कंपनात्मक गति मिलती है। जड़ परमाणु में घूर्णन और वर्तुलात्मक गति के योगफल में इतनी कंपनात्मक गति नहीं मिलती है। इसीलिए जड़ प्रकृति में मात्रात्मक परिवर्तन के साथ गुणात्मक परिवर्तन होता है। जैसे भौतिक संसार का रसायन संसार में परिवर्तित होना मात्रात्मक परिवर्तन के साथ गुणात्मक परिवर्तन है। चैतन्य प्रकृति में केवल गुणात्मक परिवर्तन होता है। जड़ प्रकृति में जितनी कंपनात्मक गति है उससे अधिक कंपनात्मक गति जीवन में है। जीवन में इतनी कंपनात्मक गति है कि वह ज्ञान स्वरुप में व्यक्त होने योग्य है। जीवन क्रिया में ज्ञान व्यक्त होना ही संचेतना है। जड़ क्रियाकलाप यांत्रिकता है। जीवन शरीर से जो क्रियाकलाप कराता है– वह यांत्रिकता है। जीवन में जड़ शरीर को संचालन करने के रूप में यांत्रिकता है। जीवन में ज्ञान संचेतना स्वरुप में व्यक्त होता है– **दृष्टापद** में जीवन में संचेतना और यांत्रिकता का अविभाज्य है। संचेतना के प्रमाण के लिए यांत्रिकता है। (**अध्याय:2.1, पृष्ठ नंबर:160**)
- तदाकार तद्रूप होने की स्थिति की **दृष्टापद** है। (**अध्याय:3.1, पृष्ठ नंबर: 283**)
- स्व निरीक्षण पूर्वक जीवन **दृष्टा पद**–प्रतिष्ठा को पाता है। **दृष्टा पद**–प्रतिष्ठा में पहुंचते हैं तो सुबह निरीक्षण हुआ। **दृष्टा पद** प्रतिष्ठा में नहीं पहुंचे तो स्व निरीक्षण नहीं हुआ। **दृष्टा पद** प्रतिष्ठा स्व निरीक्षण का प्रमाण है। **दृष्टा पद** प्रतिष्ठा पूर्वक सह–अस्तित्व समझ में आता है। चारों अवस्थाओं के साथ मानव का होना समझ में आता है। मानव का शरीर और जीवन के संयुक्त रुप में होना समझ में आता है। शरीर का महत्व और जीवन का महत्व समझ में आता है। शरीर मानव परंपरा के रूप में है। जीवन का महत्व शाश्वत रूप में है। इसी आधार पर प्रतिपादित किया है "ब्रह्म सत्य, जगत शाश्वत"। (**अध्याय:3.2, पृष्ठ नंबर: 306**)
- अभी तक किसी भी परंपरा में "महाकारण" का उद्घाटन करना नहीं बना।" कारण" को बताना भी नहीं बना। "स्थूल" को बताने वाले बहुत हैं। जीवन को समझे बिना "सूक्ष्म" को समझाना बनेगा नहीं। सूक्ष्म को समझने पर ही **दृष्टा पद** समझ में आता है। **दृष्टा पद** समझ में आने पर ही दृश्य समझ में आता है। दृश्य समझ में आने पर प्रयोजन समझ में आता है। प्रयोजन समझ में आना ही "परम सूक्ष्म" है। यह ज्ञान हो जाना ही परिपूर्णता है। इंद्रिय गोचर विधि से मानव परिपूर्ण नहीं होता है, ज्ञान गोचर विधि से ही मानव परिपूर्ण होता है। इंद्रिय गोचर विधि से

संपूर्णता समझ में आता ही नहीं है तो उसके साथ जियेंगे कैसे? ज्ञान गोचर विधि से संपूर्णता समझ में आता है तभी उसके साथ जीना बनता है। **(अध्याय:3.2, पृष्ठ नंबर: 311–312)**

- प्रश्न: समाधि के बाद आपकी कल्पनाशीलता में क्या हुआ?
  उत्तर: समाधि की अवस्था में मेरे आशा, विचार, इच्छा चुप हो गए। समाधि के बाद मुझे भूतकाल की पीड़ा, भविष्य की चिंता और वर्तमान से विरोध नहीं रहा। मेरी कल्पनाशीलता यह स्थिति में तदाकार हो गई। यह समाधि के बाद और संयम से पहले की स्थिति थी। इसमें मूल जिज्ञासा (सत्य से मिथ्या कैसे पैदा होता है?) का उत्तर पाना शेष रहा। इस स्थिति संयम करने के लिए आधार बनी। संयम में पता चला सह–अस्तित्व है, नित्य है, सदा सदा है। सह–अस्तित्व में जड़–चैतन्य ने प्रकृति भीगा है, डूबा है, घिरा है यह देखा। **दृष्टा पद** में होते हुए जो चित्रण मेरे सामने आया, उसको मैं स्वीकारता रहा। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:363)**
- प्रश्न: **दृष्टा पद** का क्या अर्थ है?
  उत्तर: मैं देखने वाला हूँ और मुझे कुछ दिखता है। यह **दृष्टा पद** है। आत्मा **दृष्टा पद** में होता है। संयम काल में आत्मा में **दृष्टा पद** और बुद्धि में बोध के योगफल में मैं देखता रहा जिसके फलस्वरुप अनुभव हुआ। संयम के बाद स्मरण जुड़ गया। स्मरण जुड़ने से उसको व्यक्त करना बना। आत्मा के साक्षी में स्मरण पूर्वक किया गया कार्यकलाप अध्ययन है। स्मरण चित्र में होता है (चित्रण के रूप में)। साधना समाधि संयम विधि से हो या अध्ययन विधि से हो दोनों विधियों में आत्मा में दृष्टा पर और बुद्धि में बोध के योगफल में ही समझा जाता है। बुद्धि के अनुरूप आशा, विचार, इच्छा होने पर **दृष्टा पद** है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 363)**

- प्रश्न: क्या संयम काल में जो आपने देखा, उसमें आपकी कल्पना प्रयोग हुई?
  उत्तर: नहीं। मैंने **दृष्टा पद** से अध्ययन किया है, कल्पना से अध्ययन नहीं किया है। समाधि, ध्यान और धारणा इन तीनों के एकत्र होने पर संयम होता है। इसमें अन्यथा कल्पना के होने की संभावना ही नहीं है जो मैंने देखा वह बोध के रूप में आ गया। आशा, विचार और इच्छा बुद्धि के अनुसार कम काम करने के लिए तैयार हुआ। **दृष्टा पद** में दृश्य के साथ ही संबंध है और बीच में नहीं है। **(अध्याय:, पृष्ठ नंबर: 367)**

- जीवन अपने स्वरूप में एक गठन–पूर्ण परमाणु है – जिसमें चार परिवेश और एक मध्यांश होता है। जिस को मैंने अच्छे तरह से देखा है। जीवन परमाणु भार बंधन और अणु–बंधन से मुक्त है – यह समझ में आता है। जीवन–ज्ञान का यह पहला भाग है।
  दूसरा भाग है – जीवन ही दृष्टा, कर्ता, और भोक्ता है। मानव जीवन और शरीर का संयुक्त रूप है। अनुभव पूर्वक जीवन **दृष्टा पद** में होता है। कर्ता और भोक्ता मानव है। अनुभव का प्रमाण मानव–पद में होता है। शरीर गर्भाशय में रचित होता है। जीवन अस्तित्व में रहता ही है।
  http://madhyasth-darshan.blogspot.com/2008/11/blog-post_09.html